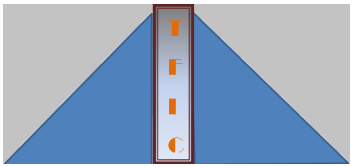

THE FREE INDOLOGICAL COLLECTION

WWW.SANSKRITDOCUMENTS.ORG/TFIC

FAIR USE DECLARATION

This book is sourced from another online repository and provided to you at this site under the TFIC collection. It is provided under commonly held Fair Use guidelines for individual educational or research use. We believe that the book is in the public domain and public dissemination was the intent of the original repository. We applaud and support their work wholeheartedly and only provide this version of this book at this site to make it available to even more readers. We believe that cataloging plays a big part in finding valuable books and try to facilitate that, through our TFIC group efforts. In some cases, the original sources are no longer online or are very hard to access, or marked up in or provided in Indian languages, rather than the more widely used English language. TFIC tries to address these needs too. Our intent is to aid all these repositories and digitization projects and is in no way to undercut them. For more information about our mission and our fair use guidelines, please visit our website.

Note that we provide this book and others because, to the best of our knowledge, they are in the public domain, in our jurisdiction. However, before downloading and using it, you must verify that it is legal for you, in your jurisdiction, to access and use this copy of the book. Please do not download this book in error. We may not be held responsible for any copyright or other legal violations. Placing this notice in the front of every book, serves to both alert you, and to relieve us of any responsibility.

If you are the intellectual property owner of this or any other book in our collection, please email us, if you have any objections to how we present or provide this book here, or to our providing this book at all. We shall work with you immediately.

-The TFIC Team.

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

ज्ञानपीठ-पुस्तकागार

"[illegible]"

कृपया—

(१) मैले हाथोंसे पुस्तकको स्पर्श न कीजिये। जिल्दपर कागज चढ़ा लीजिये।

(२) पन्ने सम्हालकर उलटिये। थूकका प्रयोग न कीजिये।

(३) निशानीके लिये पन्ने न मोड़िये, न कोई मोटी चीज रखिये। कागजका टुकड़ा काफी है।

(४) हाशियोंपर निशान न बनाइये, न कुछ लिखिये।

(५) खुली पुस्तक उलटकर न रखिये, न दोहरी करके पढ़िये।

(६) पुस्तकको समयपर अवश्य लौटा दीजिये।

"पुस्तकें ज्ञानजननी हैं, इनकी विनय कीजिये"

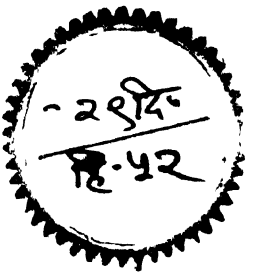

२१दि
हि॰५२

३२३५

जैन युग निर्माता

अथवा

आदर्श जैन चरित्र।

सम्पादक—

पं० मूलचन्द्र जैन "वत्सल"

विद्यारत्न-कलानिधि, साहित्यशास्त्री-दमोह ।

प्रकाशकः—
मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
दिगम्बर जैनपुस्तकालय
गांधीचौक, कापडियाभवन
सूरत–Surat.

प्रथमवार]　　वीर सं० २४७७　　[प्रति १०००

मूल्य—पांच रुपये।

मुद्रकः—
मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
'जैनविजय' प्रिं० प्रेस
गांधीचौक–सूरत।

निवेदन ।

ऐसे तो कई तीर्थंकर, कई महामुनि, कई महान् सम्राट् व कई आचार्योंके चरित्र प्रकट हो चुके हैं, लेकिन एक ऐसे ग्रन्थकी आवश्यकता थी जिसमें जैन युग-निर्माता, जैन युग-पुरुष व जैन युगाधार व जैन युगान्त महापुरुषोंके चरित्र एक साथ सरल भाषामें हों अतः ऐसे ऐतिहासिक कथा-ग्रन्थकी आवश्यकता इस ग्रन्थसे पूर्ण होगी ।

इस ग्रन्थकी रचना जैनाचार्य, जैन कवियोंका इतिहास, ऐतिहासिक महापुरुष, आदि २ के रचयिता श्रीमान् पं० मूलचंदजी जैन वत्सल विद्यारत्न, विद्या-कलानिधि, साहित्यशास्त्री—दमोह-निवासीने महान् परिश्रमपूर्वक की है । दो वर्ष पहिलेकी बात है कि जब आपने हमें इस ग्रन्थके प्रकाशनके विषयमें लिखा तो हमने इसे देखकर इसके प्रकाशनकी स्वीकृति बड़े हर्षसे दी थी जो आज हम प्रकाशन कर रहे हैं । हमसे जितने हो सके उतने भाव-चित्र इस कथा-ग्रन्थमें संमिलित किये हैं जो पाठकोंको अधिक रुचिकर होंगे ।

वत्सलजीकी लेखनी इतनी सरल व सुबोध होती है कि उसे पढ़नेसे मन नहीं हटता। अतः इस चरित्र ग्रन्थका अधिकाधिक प्रचार हो इसलिये हमने इसे प्रकट करना उचित समझा है। आशा है इस प्रथम आवृत्तिका शीघ्र ही प्रचार हो जायगा। इसमें कोई त्रुटि रह गई हो तो सुज्ञ पाठक उन्हें सूचित करनेकी कृपा करें ताकि वे दूसरी आवृत्तिमें सुधर सके।

ऐसे महान् ग्रन्थका संपादन करनेवाले पंडित वत्सलजी जैन समाजके महान् उपकारके पात्र हैं, तथा हम भी आपके परम उपकारी हैं कि आपने ऐसी महान् कथा-ग्रन्थकी रचना प्रकाशनार्थ भेज हमें कृतार्थ किया, अतः आप अतीव धन्यवादके पात्र हैं।

सूरत-वीर सं० २४७७
श्रावण सुदी १५
ता० १७-८-५१.

निवेदकः—
मूलचन्द किसनदास कापड़िया
-प्रकाशक।

प्रस्तावना।

उस पुराने युगकी यह कथाएं हैं जब हमारी सभ्यता विकासके गर्भमें थी। तब भोग युगके महासागरसे कर्मयुगकी तरंगें किस मृदुगतिसे प्रवाहित हुयीं, कर्मयुगके आदिसे मानव सभ्यताका विकास किस तरह हुआ ? रीति रिवाजोंकी आवश्यक्ता कब और क्यों हुई, उसकी उत्पत्ति और वृद्धि किन साधनोंसे हुई, इन सबका मनोरंजक वर्णन इन कथाओं द्वारा किया गया है।

प्राचीन भारतीय सभ्यताकी प्रारंभिक स्थिति क्या थी ? प्राचीन भारतीय किस दिशामें थे ? उनका अन्तिम आदर्श क्या था ? आत्म विकासके लिए उनके हृदयमें कितना स्थान था, ये कथाएं यह सब रहस्य उद्घाटित करेंगी।

इन कथाओंमें उन चित्रोंके दर्शन होंगे जिनके विना हमारी सभ्यताके विकासका चित्रपट अधूरा रह जाता है।

ये कथाएं केवल मनोरंजन मात्र नहीं हैं, किन्तु प्राचीन युगके प्रारंभ कालकी इन कथाओंको पढ़नेपर पाठकोंको इसमें और भी कुछ मिलेगा। इसमें सभ्यताके मूल बीज मिलेंगे और भारतीयोंका अतीत गौरव, महान त्याग और आत्मोत्सर्गकी पुण्य स्मृतियां प्राप्त होंगी।

इन कथाओं द्वारा प्राचीन मान्यताओंको प्राचीन कथानकोंमेंसे निकालकर, उन्हें मौलिक रूपमें जनताके साम्हने रखनेका थोड़ासा प्रयत्न किया गया है। इसमें वर्णित मान्यताओं और महत्वके

दृष्टिकोणमें मतभेद हो सकता है लेकिन उस समयकी परिस्थितिको साम्हने रखकर तुलना करनेवालोंको यह सब जंचेगा।

आदिकी ५ कथाएँ कर्मयोगी-ऋषभदेव, जयकुमार, सम्राट् भरत, श्रेयांसकुमार और बाहुबलि इनमें भारतकी आदि कर्मभूमिकी प्रवृत्तियें मिलेंगी, और अन्य कथाओंमें आत्म त्याग, सहनशीलता, वीरत्व, आत्मस्वातंत्र्य और पवित्र आत्मदर्शनकी छटा दिग्दर्शित होगी।

प्रत्येक युगका संक्रान्ति समय महत्व पूर्ण हुआ करता है। उस समय पुरानी सृष्टिके अंतके साथ नई सृष्टिका सृजन होता है। वह सृष्टि ही आगेकी रचनाके लिये आधारभूत हुआ करती है। उस समयकी परिस्थितिको काबूमें रखना, उद्वेलित जनताको संतोष देना और उसका मार्ग प्रदर्शन करना अत्यंत महत्वशाली होता है। यह कार्य महानतर व्यक्ति द्वारा ही पूर्ण होता है। परिस्थितिको सम्हालनेका चातुर्य, महत्व और ज्ञानवैभव किन्हीं विरले पुरुषोंमें हुआ करता है।

दिग्मूढ़ और अव्यवस्थित जनताका मार्ग प्रदर्शन साधारण महत्वका कार्य नहीं है, ऐसे महा संकटके समयमें जिन महापुरुषोंने पथ प्रदर्शकका कार्य किया है वे हमारी श्रद्धा और आदरके पात्र हैं। प्राचीन इतिहासमें उनका गौरवमय स्थान है। उन्हें अपनी श्रद्धांजलियां समर्पित करना हमारा कर्तव्य है।

आजके विकासवादके युगमें जब कि भौतिकविज्ञान आत्म-विज्ञानका स्थान ले रहा है, त्याग और आत्मसंतोषकी यह कथाएँ नया जीवन और शांति दे सकेंगी। भोगवाद और इन्द्रिय विलासमें जीवनकी सफलता माननेवालोंके साम्हने आत्म प्रकाशका यह प्रदर्शन सफल हो सकेगा अथवा नहीं इन सन्देहोंमें हमें नहीं पड़ना चाहते। हमें तो जनताके साम्हने महापुरुषोंके महत्वको

जैन युगनिर्माता-चित्रसूची।

नं०	चित्र	पृ०
१	श्री तीर्थंकरकी माताके सोलह स्वप्न	१
२	पांडुक शिलापर श्री तीर्थंकरके जन्म-कल्याणकका दृश्य	८
३	श्री १००८ कर्मयोगी भगवान श्री ऋषभदेव ...	१६
४	सुलोचना स्वयंवर व मेघेश्वर जयकुमार ...	३२
५	भारतके आदि चक्रवर्ति सम्राट् भरतके १६ स्वप्न	४८
६	भ० ऋषभदेवको राजा श्रेयांसकुमार इक्षुरसका आहार दे रहे हैं	६४
७	महाबाहु श्री बाहुबलि- श्री गोमटस्वामी श्रवणबेलगोला	८०
८	सीताजीकी अग्नि-परीक्षा (अग्निका सरोवर बन जाना)	१२८
९	दयासागर श्री १००८ नेमिनाथस्वामीको पशु शोकसे वैराग्य, विवाह रथ वापिस व गिरनार गमन ...	१७६
१०	तपस्वी गजकुमार-मुनिराजके मस्तकपर अग्नि जल रही है	२०८
११	पवित्र-हृदय चारुदत्त व वेश्या-पुत्री वसंतसेना	२१६
१२	श्री चारुदत्त मुनि अवस्थामें	२२४
१३	श्री पार्श्वनाथको पूर्वभवके वैरीका उपसर्ग, धरणेन्द्र तथा पद्मावती देवी द्वारा उपसर्ग निवारण ...	२३२
१४	श्री १००८ भ० पार्श्वनाथस्वामी (प्राचीन प्रतिमाजी)	२४०
१५	सुकुमार सुकुमाल मुनि अवस्थामें (स्यालनियां आपका भक्षण कर रही हैं)	२७२

नं०	चित्र	पृ०
१६	भ० महावीरके जीवको सिंह योनिमें मुनिराजका उपदेश...	३८७
१७	श्री १००८ समवसरण महावीर (वर्द्धमान) ...	२८८
१८	भ० वीरका आगमन-अश्वमेध यज्ञ बन्द ...	,,
१९	मुनिराज, श्रेणिकराजा व चेलना रानी... ...	२९६
२०	भगवान्के समवसरण (बारह सभा) का दृश्य ...	३५२
२१	इन्द्रभूति गौतमका मानस्तंभ देखते ही मानभंग	३५३
२२	समंतभद्रस्वामी द्वारा स्वयंभू स्तोत्र रचते ही महादेवकी पिंडी फटकर श्री चंद्रप्रभुकी प्रतिमा प्रकट होना व नमस्कार करना	३६८

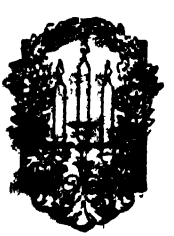

युग पुरुष-संक्षिप्त परिचय।

ऋषभदेव—भोगभूमिके अंतमें आदिनाथ ऋषभदेवका जन्म हुआ था तब कर्मयुगका प्रारंभ हुआ। कल्पवृक्षोंका अभाव हो जानेपर आपने भोजनकी उचित व्यवस्था की। प्रत्येक व्यक्तिके योग्य मानव कर्तव्यका निरूपण किया। कर्मके अनुसार वर्ण व्यवस्थाकी स्थापना की, साधुमार्गका प्रदर्शन किया और आत्मधर्मकी विवेचना की। आपने केलाश पर्वतसे निर्वाण लाभ लिया।

जयकुमार—चक्रवर्ति भरतके सैनापतिके रूपमें आपने म्लेच्छ राजाओंसे सर्व प्रथम युद्ध किया।
आपके समयमें स्वयंवर प्रथाका प्रारंभ हुआ। आप स्वयंवरके प्रथम विजेता थे।
एकपत्नी व्रतके आदर्शको आपने सर्व प्रथम स्थापित किया और देवताओं द्वारा परीक्षणमें सफल हुए।

चक्रवर्ति भरत—भारतके आप आदि चक्रवर्ती समाट् थे। आपने सम्पूर्ण भारत और म्लेच्छ खंडोंमें दिग्विजय की थी। आपने ब्राह्मण वर्णकी स्थापना की। आत्मज्ञानके आदर्शको आपने प्रदर्शित किया।

दानवीर श्रेयांसकुमार—आपने दान प्रथाका सर्व प्रथम प्रदर्शन किया, चार दानोंकी व्यवस्था की और उनकी विस्तृत विवेचना की।

महाबाहु बाहुबलि—आपने स्वाधीनताकी रक्षाके लिए अपने भाई चक्रवर्ति भरतसे युद्ध किया और उसमें विजयी हुए। वर्षों तक आप अचल समाधिमें स्थिर रहे।

श्री तीर्थंकरकी मातांके १६ स्वप्न ।

चमत्कारिणी ज्ञान शक्ति थी । अपनी अपूर्व प्रतिभाके बलपर अल्पकालमें ही उन्होंने अनेक विद्याओं और कलाओंको प्राप्त कर लिया ।

विद्या और कलाप्रेमी होनेके अतिरिक्त वे नम्रता, दयालुता आदि अनेक सद्गुणोंसे युक्त थे ।

युवा होनेपर उनका शरीर अत्यन्त दृढ़ और तेजपूर्ण दर्शित होने लगा । वे अतुल बलशाली थे । उनके संपूर्ण सुडौल अवयव देखनेवालेके मनको आकर्षित करते थे ।

युवक ऋषभने अब यौवनके क्षेत्रमें अपना पैर बढ़ाया था । पूर्ण यौवन-संपन्न होने पर भी काम उनके पवित्र हृदयमें प्रवेश नहीं कर सका था । विषयविकारसे वे जलमें कमलकी तरह निर्लिप्त थे । उनका संपूर्ण समय जनसेवा, ज्ञान विकास और परोपकारमें ही व्यतीत होता था ।

सेवा और परोपकार द्वारा उन्होंने अयोध्याकी संपूर्ण जनताके हृदयपर अपना अधिकार जमा लिया था । वे अपने प्रत्येक क्षणका सदुपयोग करते थे । सदाचार और पवित्रता उनके मंत्र थे और जनसेवा उनका कर्तव्य था ।

कुमारऋषभको यौवन पूर्ण देखकर नाभिरायको उनके विवाहकी चिंता हुई । यद्यपि वे जानते थे कि कुमार ऋषभ काम जयी है । किन्तु उनका योग्य विवाह संस्कार कर देना वे अपना कर्तव्य समझते थे । वे यह भलीभांति जानते थे कि गृहस्थ जीवनको भलीभांति संचालन करनेके लिए विवाह अत्यंत आवश्यक है । जीवन संग्राममें विजय पानेके लिए प्रत्येक व्यक्तिको एक योग्य साथी आवश्यक होता है । इसलिए वे कुमार ऋषभके लिए सुयोग्य कन्यारत्नकी खोजमें रहने लगे ।

पांडुक शिलापर श्री १००८ तीर्थंकर (भगवान) के जन्मकल्याणकका दृश्य ।

विदेह क्षेत्रके कुलपति कच्छ और सुकच्छकी सुंदरी कन्याओंको उन्होंने अपने युगके लिये चुना। दोनों कन्याएं रूपमें और गुणमें परम श्रेष्ठ थीं। नाभिरायने उन दोनों कन्याओंकी कच्छ और सुकच्छसे याचना की। उन्होंने इसे अपना सौभाग्य समझा और प्रसन्न मनसे स्वीकृति प्रदान की।

निश्चित समयपर बड़े समारोहके साथ कुमार ऋषभका पाणिग्रहण हुआ। विवाहोत्सवमें अनेक स्थानके कुलपति निमंत्रित हुए थे। नाभिरायने सबका उचित सत्कार सम्मान किया। इस विवाहसे भरत और विदेह क्षेत्रके कुलपतियोंका स्नेहबन्धन अत्यन्त सुदृढ़ होगया।

(३)

सुन्दरी यशस्वती और सुनन्दाके साथ युवक ऋषभदेव सुखमय जीवन व्यतीत करने लगे। दोनों पत्नियां उनके हृदयको निरंतर प्रसन्न रखनेका प्रयत्न करती थीं। उनका गृहस्थ जीवन आदर्श रूप था।

एक रात्रिको सुंदरी यशस्वतीने मनोमोहक स्वप्नोंको देखा। स्वप्नोंको देखकर उनका हृदय अत्यंत प्रसन्न हो उठा। सवेरे ही उन्होंने अपने पतिसे स्वप्नोंके फलको पूछा। पतिदेवने अत्यंत हर्षके साथ कहा—प्रिये! तूने जिन सुन्दर स्वप्नोंको देखा है वे यह प्रदर्शित करते हैं कि तेरे गर्भसे पृथ्वीतलपर अपना अखंड प्रभुत्व स्थापित करनेवाला वीर पुत्र होगा। स्वप्नका फल जानकर देवी यशस्वतीका हृदयकमल खिल उठा।

निश्चित समयपर यशस्वतीने सुन्दर पुत्ररत्नको जन्म दिया। बालक अत्यंत कांतिवान और तेजस्वी था। पौत्रजन्मसे नाभिरायके

हर्षका ठिकाना न रहा। अयोध्या पुनः उत्सवसे एक बार फिर सुसज्जित हो उठी। ज्योतिर्विदोंने वीर बालकका नाम भरत रखा।

कुछ दिन बाद देवी सुनन्दाने भी पुत्र प्रसव किया जिसका नाम 'बाहुबली' रखा गया।

पुत्रजन्मके कुछ समय पश्चात देवी यशस्वती और सुनन्दाने दो कन्याओंको जन्म दिया जिनका नाम ब्राह्मी और सुन्दरी निर्धारित किया गया।

नाभिरायका प्रांगण बालक बालिकाओंकी मधुर क्रीड़ा और विनोदसे भर गया। सभी बालक बालिकाएं परस्पर खेल कूदकर घरभरमें आनंद रसकी वर्षा करने लगीं। नगरके सभी नर नारी उन सुन्दर बालकोंको देखकर फूले नहीं समाते थे।

श्री ऋषभदेव सभी बालकोंको अल्पावस्थासे ही योग्य शिक्षण देने लगे। बालिकाओंको भी वे पूर्ण शिक्षित और ज्ञानवान् बनाना चाहते थे इसलिए कुमारी ब्राह्मी और सुन्दरीको भी उन्होंने शिक्षा देना प्रारंभ किया। सभी बालक बालिकाएं बड़े मनोयोगके साथ शिक्षा ग्रहण करते थे इसलिए थोड़ी आयुमें ही वे विद्यावान् बनगए।

भरत, बाहुबलि और वृषभसेन तीनों कुमारोंको राजनीति, धनुर्विद्या, संगीत, चित्रकला तथा साहित्यकी शिक्षा दी गई। इनमें भरतने नीतिशास्त्र, और नृत्य कलामें विशेष अनुभव प्राप्त किया। वृषभसेन संगीत और बाहुबलि वैद्यक, धनुर्वेद, तथा गज और अश्वपरीक्षामें अधिक कुशल हुए।

ह हुए ऋषभदेवने जब नीचे उतरना उचित नहीं समझा, वे एक ग ही विलंब अब अपने लिए अनुचित समझते थे, उन्होंने युवराज ातको अयोध्याका राज्य प्रदान किया। दूसरे राजकुमारोंको भी नके योग्य व्यवस्था उन्होंने की। फिर माता, पिता और पत्नीको बोधित किया। उनके हृदयके मोहके जालको तोड़ दिया। वे तप-ारणके लिए जंगल हो चल दिए।

[२]

मेघेश्वर जयकुमार ।

[एकपत्नीव्रतके आदर्श]

(१)

सोमप्रभ न्यायप्रिय राजा थे । हस्तिनापुरकी प्रजाके वे प्राण थे । प्रजाके प्रति उनका व्यवहार अत्यंत सरल और उदार था । रानी लक्ष्मीमती भी उन्हींके अनुरूप थीं । सुन्दरी होनेके साथ ही वे सुशील नम्र और कलाप्रिय थीं । दोनोंका जीवन शांति और सुखमय था ।

वसंतमें आम्रमंजरी मधुरससे भरकर सरस हो उठती है, लतिकाएं लहर उठती हैं और पुष्प-समूह हर्षसे खिल उठते हैं । रानी लक्ष्मीमतिका हृदय भी बालपुष्पोंको धारणकर खिल उठा था ।

ठीक समयपर उन्होंने बालसूर्यका प्रसव किया । हस्तिनापुरकी

जनताका हर्ष उमड़ उठा । महाराजाने उदारताका द्वार खोल दिया, याचकों और विद्वानोंके लिए इच्छित दान और सम्मान मिलने लगा । बालक अत्यंत कांतिवान था । अपनी प्रभासे वह कामका भी जय करता था । उसका नाम जयकुमार रक्खा गया ।

जयकुमार बालकपनसे ही स्वतंत्रताप्रिय, स्वाभिमानी और वीर थे । उच्च कोटिकी शस्त्र और नीति शिक्षा प्राप्त कर उन्होंने अपने गुणोंको दूना चमका दिया था । लक्ष्यवेधमें वे अद्वितीय थे, उसकी समता करनेवाला उस समय भारतमें कोई दूसरा धनुर्धर नहीं था । साहस और धैर्यमें वे सबसे आगे थे । इन्हीं गुणोंके कारण उनकी कीर्ति अनेक नगरोंमें फैल गई थी । उनके साहस और पराक्रमको देखकर सोमप्रभजीने उन्हें युवराज पद प्रदान किया था और वे इसके सर्वथा योग्य थे ।

संध्याका समय; नीलाकाश चित्रित हो रहा था । आकाशकी पृष्ठ भूमिपर प्रकृति बड़े ही सुन्दर चित्रोंका निर्माण कर रही थी लेकिन बहुत प्रयत्न करनेपर भी वे चित्र स्थिर नहीं रह पाते थे । मालूम पड़ता था प्रकृति कोई अत्यंत सुंदर चित्र निर्माण करनेका प्रयत्न कर रही थी । किन्तु इच्छानुसार सुन्दर चित्र निर्माण कर सकनेके कारण वह उन्हें बिगाड़कर फिरसे नया चित्र चित्रित करती थी । कितना समय बीत गया था, प्रकृतिको इस चित्र निर्माणमें ।

आसमानको छूनेवाले महलके शिखरपर बैठे हुए सोमप्रभजी प्रकृतिकी इस चित्रकला निर्माणका रस ले रहे थे। उनकी दृष्टि जिस ओर जाती आकर्षित होजाती थी । न मालूम कितने समयतक अतृप्त

रूपसे वे इन दृश्योंको देखते रहे। अचानक ही उनकी नजर महलके नीचेवाले शुभ्र सरोवरकी ओर गई। सरोवरके स्वच्छ जलमें सायं-कालीन लालिमाने विचित्र ही दृश्य करदिया था—सारा सरोवर प्रभासे स्वर्णमय बन गया था। एक ओर यह दृश्य उन्होंने देखा; दूसरी ओर उन्होंने कमलोंके संकुचित कलेवर पर दृष्टि डाली। अरे! इस सुन्दर समयमें उनका मुख इतना म्लान क्यों होरहा था। उनकी वह प्रातः—कालीन मधुर मुस्कान विषादमें परिणत होरही थी। वह हर्ष, वह लालिमा, वह सुकुमारता उनकी किसीने हरण करली थी।

उनके नेत्रोंके सामने प्रभातका वह सुन्दर दृश्य नृत्य करने लगा। जब मलय वह रही थी और मुस्कुराते हुए कमल पुष्पोंको मीठी मीठी थपकी दे रही थी। सूर्य उसके सौन्दर्य पर अपना सार्वस्व न्योछावर कर रहा था। उसकी प्रकाशमयी किरणें प्रत्येक अंगका आलिंगन कर मनो-मुग्ध होरही थीं, मधुपगण मधुरस पीकर मदोन्मत्त होरहा था, गुन गुन नादसे अपने प्रेमीका गुणगान कर रहा था, और अब यह संध्याका समय कमलोंको उनकी मृत्युका संदेह सुना रहा था।

वे अपना सिर झुकाए हुए सब सुन रहे थे, किरणें उनसे दूर भाग रहीं थीं, सूर्यका आलिंगन शिथिल हो रहा था। इस विपत्तिके समय औरे भी उसका साथ छोड़कर न मालूम कहां चले गए थे। कुछ बेचारे जिन्होंने उनके मधुर मधुरसका पान किया था, दृष्टिसे आलिंगन किया था वही उसके साथी इस विपत्तिके समयमें उन्हें अकेला नहीं छोड़ना चाहते थे। कमल अब अपने इस संकुचित और मलिन मुखको संसारके सामने नहीं दिखलाना चाहते थे। वे भी धीरे २ अपनी

आंखे मूंद लेना चाहते थे। ओह! अब तो उनका मुंह बिलकुल बंद हो गया? लेकिन वह पागल भ्रमर अबे! वह भी क्या उसीमें बंद हो गया? हां हो गया। सोमप्रभजीने देखा वह मधु-लोलुपी भ्रमर कमलके साथ ही साथ उसमें बंद हो गया। उनका हृदय तिलमिला उठा, वे अचानक बोल उठे—अरे! अब उस मूर्ख मधुपका क्या होगा? क्या रात्रिभर कमल कोष्यमें बंद रहकर वह अपने प्राणोंको सुरक्षित रख सकेगा? उन्हें उसकी आसक्तिपर हृदयमें बड़ी ग्लानि हुई। ओह! भ्रमर तुमने क्या कभी यह सोचा है कि प्रभात होनेतक कमल तुम्हें जीवित रख सकेगा? तुम्हें यह भी मालूम था कि तुम्हारी इस अनुरक्तिका अंतिम परिणाम क्या होगा? और मूर्ख मानव! तू भी तो इस मधुर वासना और कमनीय कामनाओंके कलरवमें प्रभातसे लेकर जीवनके अंतिम सायंकाल तक अपनेको व्यस्त रखकर काल-रात्रिके हाथों सौंप देता है। तूने कभी भी यह सोचा है कि इसका अंतिम परिणाम क्या होगा? जीवनके इस सौन्दर्यपूर्ण पटका दृश्य परिवर्तन कितना भयंकर होगा? ओह! मुझे भी तो इस परिवर्तनमेंसे गुजरना होगा।

सोमप्रभकी आत्मापर संध्याके इस दृश्यने विचारोंकी विचित्र तरंगें लहरायीं। उनका हृदय एकाएक संसारसे विरक्त होने लगा। धीरे धीरे आत्मज्ञानका सुन्दर प्रभात उदित हुआ, उसमें उन्होंने अनंत शक्तिसे आलोकित प्रभाको देखा। वैभवसे उन्हें विरक्ति हो उठी, इन्द्रिय सुखकी इच्छाएं जलने लगीं और वे वैराग्यकी उज्ज्वल कीर्तिका दर्शन करने लगे। निर्मल आकाशमें दिशाएं जिसतरह शांत होजाती

विजयसे तुम्हें प्रसन्न होना चाहिए था । लेकिन मैं देखता हूं कि तुम इससे क्षुब्ध हो उठे हो—चक्रवर्ति पुत्रके लिए यह शोभापद नहीं । मैं जानता हूं तुम वीर हो, लेकिन वीरताका इस प्रकार दुरुपयोग करना, होनेवाले भावी भारत—सम्राट्के लिए अनुचित है । वीरता अन्याय प्रतिकारके लिए होना चाहिए, दुष्ट दलनके लिए ही उसका प्रयोग उचित होगा । इसके विरुद्ध एक अन्याय युद्धमें उसका उपयोग होता देख कर मेरा हृदय दुखित होरहा है । वीर कुमार ! तुम्हें शांत होना चाहिए और मेरी इस विजयमें सम्मिलित होकर अपने स्नेहका परिचय देना चाहिए ।

अर्ककीर्ति मानो इन शब्दोंको सुननेके लिए तैयार न था, बोला—जयकुमार ! गलेमें पड़े हुए फूलोंको देखकर तुम विजयसे पागल हो गए हो, इसलिए ही तुम्हें मेरा अपमान नहीं खलता । राजाओंकी विराट् सभामें चक्रवर्ति पुत्रके गौरवकी अवहेलना करना तुम्हारे जैसे पागलोंका ही काम है, मैं यह तुम्हारा पागलपन अभी ठीक करूंगा । तुम्हें अभी मालूम हो जायगा कि वीर पुरुष अपने अन्यायका बदला किस तरह लेते हैं । यदि तुम्हें अपने प्राण प्रिय हैं, तो अब भी समय है तुम इस कुमारीको सादर मेरे चरणोंमें अर्पण कर दो । तुम जानते हो कि श्रेष्ठ वस्तु महान् पुरुषोंको ही शोभा देती है, क्षुद्र व्यक्तियोंके लिये नहीं ! इसलिए मैं तुम्हें एकबार और समय देता हूं, तुम खूब सोच लो । यदि तुम्हें अपना जीवन और भारतके भावी सम्राट्का सम्मान प्रिय है तो सुलोचना देकर मेरे प्रेम-भाजन बनो ।

जयकुमारका हृदय इन शब्दोंसे उत्तेजित नहीं हुआ । उसने

एकबार और अपनी सहृदयताका प्रयोग करना चाहा । वह बोला— कन्या अपना हृदय एकबार ही समर्पण करती है और जिसे समर्पण करती है वही उसके लिए महान् होता है। महानता और तुच्छताका नाप उसका परीक्षण है । अपने मुंहसे महान् बनना शोभाप्रद नहीं । कुमारीने मुझे वरण किया है, वह हृदयसे अब मेरी पत्नी बन चुकी है किसीकी पत्नीके प्रति दुर्भावनाएं लाना नीचताके अतिरिक्त कुछ नहीं है । चक्रवर्ति पुत्रके मुंहमें इस तरहकी अनर्गल बातें सुननेकी मुझे आशा नहीं थी । तुम्हें जानना चाहिए कि वीर पुरुष महिलाओंकी सम्मान रक्षा अपने प्राण देकर करते हैं। यदि तुम नहीं मानते, तुम्हारी दुर्बुद्धि यदि तुम्हें अन्यायके लिए प्रोत्साहित करती है तो मुझे तुम्हारे अविवेकको दंड देनेके लिए युद्धक्षेत्रमें उतरना होगा । मैं तुमसे डरता नहीं हूं, जयकुमार अन्याय और युद्धसे कभी नहीं डरता । यदि तुम्हारी इच्छा युद्धका तमाशा देखनेकी ही है तो मैं वह भी तुम्हें दिखला दूंगा ।

कुपित अर्ककीर्ति पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह बोला— युद्ध तो तुम्हारे शिरपर खड़ा हुआ है, तुम इसे बातोंसे टालनेका प्रयत्न क्यों करना चाहते हो ? यदि तुम्हें मृत्युका भय है तो शीघ्र ही मुझे सुलोचना समर्पित करदो, नहीं तो तुम्हें मृत्युकी गोदमें सुला-कर मैं इसका उपभोग करूंगा ।

शांत ज्वालाको प्रलयने उभाड़ा । जयकुमारके हृदयका वीरभाव अब सोता नहीं रह सका । वह बहादुर, अर्ककीर्ति और उसके उभाड़े सैकड़ों राजकुमारोंके सामने कुपित केशरी, सिंहकी तरह बढ़ चला ।

अकंपनकी सेनाने उसका साथ दिया। अर्ककीर्तिका विशाल सैन्य और राजाओंके समूहने एकत्रित होकर उसे घेर लिया। तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा होने लगी और मानव जीवनके साथ मृत्युका खेल होने लगा। अर्ककीर्तिकी संगठित विशाल सेनाके सामने जयकुमारका सैन्यबल पीछे हटने लगा। जयको यह सहन नहीं हुआ। वीरताकी धारा बहाते हुए उसने अपने सैनिकोंको तीव्र आक्रमणके लिए उत्तेजित किया और शत्रुके दलको चीरता हुआ वह अर्ककीर्तिके निकट पहुंचा। उसने अर्ककीर्तिको संबोधित करते हुए कहा—इन बेचारे गरीब सैनिकोंका वध करानेसे क्या लाभ? परीक्षण तो हमारे और तुम्हारे बलका है, आओ हम और तुम युद्ध करके शक्तिका निर्णय करें।

जयकुमारके शब्द पूर्ण होनेके साथ ही उसपर एक तीक्ष्ण बाणका वार हुआ लेकिन उस तीरको अपने पास आनेके पहिले ही उसने काट डाला तब तो अर्ककीर्तिने उसपर और भी अनेक अचूक शस्त्रोंका प्रयोग किया परन्तु युद्ध-कुशल जयने उन सभी शस्त्रोंको बेकार कर दिया और बड़ी कुशलतासे शस्त्र प्रहार करके उसे नीचे गिराकर दृढ़ बंधनमें कस लिया।

अर्ककीर्तिके पराजित होते ही सभी राजकुमारोंने हथियार डाल दिए। विजयने जयकुमारका वरण किया किन्तु अर्ककीर्तिके प्रति उसके हृदयमें कोई प्रतिहिंसा अथवा विरोध नहीं था। वह तो अन्यायका बदला देना चाहता था इसलिए उन्हें उसी समय बंधन मुक्त कर दिया। अर्ककीर्तिका मुंह इस अपमानसे ऊंचे नहीं उठ सका।

वीर जयकुमारकी इस विजयसे अर्ककीर्ति बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने विजय और विवाहके उपलक्षमें एक विशाल उत्सवकी योजना की। युद्धस्थल विवाहोत्सवके रूपमें बदल गया। अर्ककीर्ति और अन्य राजाओंने इस महोत्सवमें सम्मिलित होकर पिछले विरोधको प्रेममें बदल दिया। नृत्य, गान और आनंदका मधुर मिलन हुआ और जयकुमारके गलेमें डाली वरमालाका फल सुलोचनाने विवाहके रूपमें पाया।

(५)

सुलोचना जैसी सुन्दरी और सुशीला पत्नी पाकर जयकुमारका जीवन स्वर्गीय बन गया था। सुलोचनाके लिए उसके हृदयमें निःछल स्नेह था। वह नारी जातिका सम्मान करना जानता था। उसका स्नेह उस अक्षय झरनेकी तरह था जो कभी सूखता नहीं है। दोनों ही एक दूसरे पर हृदय न्योछावर करते थे और मानवीय कर्त्तव्योंका पालन करते थे। गृहस्थ जीवनके कर्त्तव्योंको वह भूल जाना नहीं चाहते थे। जनताकी सेवा, दया, सहानुभूति और उपकारकी भावनाओंसे उनका मन भरा हुआ था, धर्मपर उनकी अटूट श्रद्धा थी। देव और गुरुभक्तिको वे जानते थे। उनका जीवन एक आदर्श जीवन था।

जयकुमारको जो कुछ भी वैभव प्राप्त था उससे वह सुखी थे। वे अपने जीवनको संयमी और धार्मिक बनाना चाहते थे। मन कहीं संयमकी सीमा उल्लंघन न कर जाए इसके लिए उन्होंने आजीवन एकपत्नी व्रत लिया था। वीर, साहसी और सुन्दर होनेके कारण वह अनेक सुन्दरियोंके प्रिय थे। लेकिन सुन्दरताके इस आलोकमें

उनके नेत्र सुलोचनाकी दिव्य आभा पर ही अनुरंजित रहते थे। वासनाओंके वीहड़ जंगलमें वे उसकी कमनीय कांतिको नहीं भूलते थे।

देवराज इन्द्रकी सभामें एक विवाद उपस्थित था, वे कहते थे, पूर्ण ब्रह्मचारीकी तरह एक-पत्नीव्रतीका भी महत्व कम नहीं है। गृहस्थ जीवनमें सुन्दरी महिलाओंके संपर्कमें रहते हुए, प्रभुता और वैभव होने पर भी अपने आपपर काबू रखना भी महान् ब्रह्मचर्य है। अखंड ब्रह्मचारी अपनी वासनाएं विजित करनेके लिए कहीं समर्थ है जब कि एकवार अपना ब्रह्मचर्य नष्ट कर देनेवाले व्यक्तिको अपने लिए अधिक समर्थ बनानेका प्रयत्न करना पड़ता है। ऐसा व्यक्ति ब्रह्मचारी रह सकता है और उसकी सफलता एक महान सफलता कही जासकती है!

देवगण इसमें सहमत नहीं थे। वह कहते थे कि जिस पुरुषने एकवार स्त्री संसर्ग कर लिया हो वह अपने आपको काबूमें नहीं रख सकता। किसी सीमामें बद्ध रह सकना उसके लिए संभव ही नहीं। वासनाकी आगमें एकवार ईंधन पड़ चुकनेपर उसकी लपटें फिर ईंधनको छूना चाहती हैं। इस दृष्टिसे एकपत्नीव्रत कहीं ब्रह्मचर्यसे अधिक मूल्यवान पड़ जाता है लेकिन उसका होना कष्टसाध्य है। इतना त्याग मनुष्य कर सकता है लेकिन कोई उदाहरण नहीं दे सकता। दलित व्यक्तिको पददलित करनेमें कुछ अधिक साधनोंकी आवश्यकता नहीं होती। गतिशील वासनाकी दिशाको अन्य दिशाकी ओर लेजाना कोई कठिन नहीं। भुक्तभोगी व्यक्तिकी वासना शीघ्र

है कि पवित्रता ही नारी जीवन है और शील ही नारी—मर्यादा है, तुम उसे संभालो ।

पवित्रताके सामने देवताका छल-छद्म नहीं टिक सका । उसे पराजित होकर प्रकट होना पड़ा । रविव्रतने अपना मायावेश बदला । देवबालाका चोला उतारकर वह अपने असली रूपमें आया और इन्द्र सभाका सारा हाल सुनाकर जयकुमारसे बोला—जयकुमार ! वास्तवमें आप जयकुमार ही हैं । आप एक—पत्नीव्रतके आदर्श हैं । आप जैसे व्रती पुरुषोंके बलपर ही देव सभामें इन्द्र इस व्रतपर निर्भय बोल रहे थे। आजीवन बाल ब्रह्मचारी महान हैं किन्तु आप जैसे एक—पत्नीव्रतधारी भी महानतासे कम नहीं हैं। मैं आपकी दृढ़ताकी प्रशंसा करता हूं और निःसंकोच रूपसे कहता हूं कि भारतको आप जैसे दृढ़ व्यक्तियोंपर अभिमान होना चाहिए । संसार आपसे दृढ़ताका पाठ सीखे और प्रत्येक भारतीय आपके आदर्शको ग्रहण करे ।

रविव्रतने इन्द्रसभामें जाकर अपने परीक्षणकी रिपोर्ट देवगणके सामने प्रस्तुत की, देवताओंने इन्द्रके दृष्टिकोणको समझा और उनकी विचारधाराको स्वीकार किया ।

जयकुमारने एकपत्नीव्रतका निर्वाह करते हुए सेवा और परोपकारमें जीवनके क्षणोंको व्यतीत किया । प्रजापर उनके संयमी जीवन, न्याय-प्रियता और वीरताका एकांत प्रभाव पड़ा था ।

एक दिन उनके हृदयमें लोककल्याणकी भावना जागृत हुई । वे राज्य बंधनमें नहीं रह सके । वे तपस्वी बने, आत्मकल्याणके पथपर बढ़े और धर्मके एक महा स्तंभ बने ।

(३)

चक्रवर्ति भरत ।

(भारतके आदि चक्रवर्ति-सम्राट् ।)

(१)

संसारसे विरक्त होने पर ऋषभदेवजीने अयोध्याका राज्य-सिंहासन युवराज भरतको समर्पित किया था । भरतजी भारतवर्षके सबसे पहले प्रतापी सम्राट् थे । जिसके प्रबल प्रतापके आगे मानवोंके मस्तक भक्तिसे झुक जाते, ऐसे दिव्य रत्नोंसे चमकनेवाले राज्यमुकुटको उन्होंने अपने सिरपर रक्खा था । वे भारतवर्षके भाग्य विधाता थे । उन्होंने संपूर्ण भारत विजय कर अपने अखंड शासनको स्थापित किया था, अपने नामसे भारतको प्रसिद्ध किया था ।

राज्य सिंहासनपर बैठते ही उन्होंने अपनी महान सामर्थ्य और धाकसे बड़े २ राजाओंके मस्तकको झुका दिया था ।

प्रभातका समय, सम्राट् भरत अनेक नरेशोंसे शोभित सिंहासन पर बैठे थे। सामंतगण शस्त्रोंसे विभूषित नियमित रूपसे खड़े थे। भरतकी वह सभा इन्द्र सभाके सौन्दर्यको पराजित कर रही थी। इसी समय प्रधान सेनापतिने राज्य सभामें प्रवेश किया। उसका हृदय हर्षसे भर रहा था। अपने मस्तकको झुकाकर वह बड़ी नम्रतासे बोला—अपने भुजबलसे नरेशोंका मानमर्दन करनेवाले सम्राट्! आज आप पर देवताओंने कृपा की है, सौभाग्य आपके चरणोंपर लोटनेको आया है। आज आपकी आयुधशाला प्रकाशसे जगमगा रही है, जिसके तेजके आगे शूरवीरोंके नेत्र झाक जाते हैं, सूर्यका प्रकाश भी मंदसा पड़ जाता है और कायरोंके हृदय भयसे कातर होजाते हैं। वही अद्भुत चक्ररत्न आपकी आयुधशालाको सुशोभित कर रहा है आप चलकर उसे ग्रहण कीजिए।

भरतनरेशने हर्षसे यह समाचार सुना, वे आयुधशाला जानेके लिए तैयार होरहे थे इसी समय एक ओरसे मंगलगान करती हुई महलकी परिचारिकाओंने प्रवेश किया, वे सम्राट्का सुयश गान करती हुई बोली—राजराजेश्वर! आज हम बड़ी प्रसन्नतासे आपको यह संदेश सुना रही हैं, आज हमारा हृदय हर्षसे परिपूर्ण होरहा है, सुनिए जो प्रबल पुण्यका प्रतिफल है जिसे देखकर हर्षका समुद्र उमड़ने लगता है और जो कुलकी शोभा है ऐसे आनन्द बढ़ानेवाले युवराजने आपके राज्यमहलको प्रकाशित किया है आप चलकर उसे देखिए अपने नेत्रोंको तृप्त कीजिए और हमारी बधाई स्वीकार कीजिए।

समयकी गति विचित्र है। जब किसीका सौभाग्य उदित होता

है तब उसके चारों ओर हर्षका साम्राज्य विस्तर जाता है। सफलता और यश उसके चरणोंपर अपने आप लौटने लगता है। आज भरतका सौभाग्य सूर्य मध्य ह्न पर था, समयने उन्हें चारों ओरसे हर्ष ही हर्ष प्रदान किया था। दोनों शुभ संवाद उनके हृदयको हर्षसे भर रहे थे इसी समय सभी ऋतुओंके फल फूलोंकी डाली सजाए हुए और असमयमें ही वसंतकी सूचना देनेवाले वनमालीने राज्य सभामें प्रवेश किया। पृथ्वीतक मस्तकको झुकाकर उसने सम्राटको प्रणाम किया फिर सुगंधिसे भरे पुष्प और फूलोंको उन्हें भेंट दिया।

आजके पुष्पमें कुछ अनूठी ही सुगंधि थी। उनकी शोभा भी विचित्र थी। भरतजीने इस चमत्कारको देखा, वे बोले—शुभे! आज मैं इन फल फूलोंके रूप और गंधमें कैसा परिवर्तन देख रहा हूं? क्या मेरे नेत्र मुझे धोखा दे रहे हैं? बोलो इसका क्या कारण है?

वनमाली बोला—नाथ! मैं उपवनमें घूम रहा था, सारे उपवनको मैंने आज एक नई शोभामें ही सजा देखा। मैंने देखा जिस आम्रकी डालियें शुष्क हो रही थीं वे नवीन मंजरियोंसे सजकर झुक गई हैं, मधुपोंका गान होरहा है और सभी ऋतुओंके फल फूलोंसे वनश्री वसंतकी शोभा प्रदर्शित कर रही है। जब मैं और आगे वनमें पहुंचा तो देखा कि मृगका बच्चा सिंह शावकके साथ खेल रहा है और शांतिका साम्राज्य सारे जंगलमें फैला हुआ है। मैं यह सब देख ही रहा था कि इसी समय मुझे आकाशसे कुछ विमान आते दिखलाई दिए मैंने। आगे बढकर सुना कुछ मधुर-कंठ भगवान ऋषभदेवका जयगान कर रहे हैं, उस ध्वनिमें मुझे स्पष्ट सुनाई पड़ा, कोई कहता था आगे

देखा होगा । सेवक बोला—न महाराज मैंने वह प्रदर्शन भी नहीं देखा । सम्राट्ने कहा अरे ! तुम यह क्या कहते हो ? तब तुमने वह नटोंका खेल भी नहीं देखा ? नहीं महाराज, मैं वह खेल कैसे देख सकता था, मैंतो अपने जीवनके खेलको देख रहा था । मेरा जीवन तो कटोरेके इन तैल बिंदुओंमें समाया था, तैलका एक बिन्दु मेरा जीवन था । मैंने अपने इस कटोरे और अपने पैरोंको मार्ग पर चलनेके सिवाय किसीको भी नहीं देखा सेवकने कहा । सम्राट्ने इसे जानेकी आज्ञा दी । फिर वे भद्र पुरुषकी ओर देखकर बोले—बंधु देखो जिस तरह इस पुरुषके सामने बहुतसे खेल तमाशे और प्रदर्शन होते रहने पर भी यह अपने लक्ष्यबिंदुसे नहीं हट सका, उसी तरह इस संपूर्ण वैभवके रहते हुए भी मैं अपने लक्ष्य पर स्थिर रहता हूं । मैं समझ रहा हूं कि मेरे सामने कालकी नंगी तलवार लटक रही है, मैं समझ रहा हूं मेरा जीवन पहाड़की उस सकरी पगडंडी परसे चल रहा है जिसके दोनों ओर कोई दीवाल नहीं है । थोड़ा पैर फिसलते ही मैं उस खन्दकमें गिर पड़ूंगा जहां मेरे जीवनके एक कणका भी पता नहीं लग सकेगा । प्रत्येक कार्य करते हुए मेरे जीवनका लक्ष्य मेरे सामने रहता है और मैं उसे भूलता नहीं हूं, इतने साम्राज्यकी व्यवस्थाका भार रखते हुए भी आत्म विस्मृत नहीं होता । फिर कुछ रुक करके बोले-भद्र पुरुष ! मैं समझता हूं मेरी बातोंसे तुम्हारे हृदयका समाधान हो गया होगा, साथ ही मैं यह भी कहना चाहता हूं कि तुम और मैं हरएक मानव बंधनमें रह कर भी अपने कर्तव्य मार्ग पर चल सकते हैं, और आत्मशांतिका लाभ ले सकते हैं ।

चक्रवर्तीके उत्तरसे भद्र पुरुषको काफी संतोष हुआ जो जनता अभीतक इस विषयमें मौन थी, वह भी इस समाधानसे संतुष्ट हुई ।

(४)

भरतजीका हृदय बहुत उदार था, वे अपनी द्रव्यका बहुतसा भाग प्रतिदिन संयमी, और व्रती पुरुषोंको दानमें देना चाहते थे । वे ऐसा कार्य करना चाहते थे, जिससे उनकी कीर्ति संसारमें चिर-स्थाई रहे । वे चाहते थे, कोई भद्र पुरुष उनसे कुछ मांगे और वे उसको दान रूपमें कुछ दें, किन्तु उस समयके सभी मनुष्य अपने वर्णके अनुसार कार्योंको करते थे, श्रम करना वे अपना कर्तव्य समझते थे, और श्रम द्वारा उन्हें जो कुछ मिलता था, उसमें संतोष रखते थे, उन्हें और किसी चीजकी चाह नहीं थी । अपनी कमाईमें ही जीवन निर्वाह करते थे, द्रव्य संचय कर वे अधिक तृष्णाके गड्ढेमें नहीं पड़ना चाहते थे, वे सरल थे, सादा जीवन गुजारना उन्हें प्रिय था । किसीसे कुछ चाहना उन्होंने सीखा नहीं था ।

सम्राट् भरतको इस विषयकी चिन्ता थी बहुत कुछ सोचने पर उन्होंने एक उपाय निश्चित किया । उन्होंने एक ऐसा वर्ण स्थापित करनेकी बात सोची जिसका जीवन दान द्रव्य पर ही निर्भर रहे, उसे दान लेनेके अतिरिक्त कोई शारीरिक श्रम या कार्य न पड़े, उस वर्णके वे पुरुष अधिक विचारशील, दयालु और बुद्धिमान हों । अपनी बुद्धि बलसे सम्राट्ने उनका चुनाव करना चाहा और एक दिन नगरके सभी नागरिकोंको उन्होंने अपनी राजसभामें निमंत्रित किया ।

कुछ प्रश्न उनके सामने रखे उनमेंसे जिन विद्वान् पुरुषोंने उन प्रश्नोंके ठीक उत्तर दिए उनका एक संघ बनाया, उस संघके सभासद होनेवाले सदाचारी और आत्मज्ञानमें रुचि रखनेवाले पुरुषोंको उन्होंने 'ब्राह्मण' वर्णकी संज्ञादी। उन्हें देव, शास्त्र, गुरुपर सच्ची श्रद्धा रखनेका आदेश देकर उसकी स्मृतिके लिए तीन तारोंवाला एक सूत उनके गलेमें डाला जिसे ब्रह्म सूत्र नाम दिया। ब्रह्म सूत्र रखनेवाले ब्राह्मणोंको उन्होंने नीचे लिखी क्रियाओंके करनेका उपदेश दिया।

(१) देवपूजा—नित्य प्रति भक्तिभावसे देवकी पूजा करना।

(२) गुरू उपासना—अपनेसे अधिक ज्ञानवाले पुरुषोंकी विनय और सेवा करना।

(३) स्वाध्याय—ज्ञानकी उन्नति करनेके लिए ग्रंथोंका पठन पाठन करना, और उनकी रचना करना।

(४) संयम—अपनी इन्द्रियां और मनको अपने काबूमें रखनेकी कोसिस करना।

(५) तप—कुछ समयके लिए एकांत चिंतन और आत्म ध्यान करना।

(६) दान—दान ग्रहण करना, और दानकी शिक्षा देना।

इन छह आवश्यक कृत्योंको नित्य प्रति करना, और नीचे लिखे दश नियमोंका पालन करना।

(१) बालकपनसे ही विद्याका अध्ययन करना।

(२) पवित्र आचार विचारोंको सुरक्षित रखना।

(३) पवित्र आचरणों और विचारोंको बढ़ाकर दूसरोंसे अपनेको श्रेष्ठ बनाना।

(४) दूसरे वर्णों द्वारा अपनेमें पात्रत्व स्थिर रखना।

(५) अन्य पुरुषोंको शास्त्रानुकूल व्यवस्था तथा प्रायश्चित्त देना।

(६–७) अपना महत्व सुरक्षित रखनेके लिए अपने उच्च आचरणोंका विश्वास दिलाकर राजा तथा प्रजा द्वारा अपना वध न किए जाने और दंड न पानेका अधिकार स्थापित करना।

(८–९) श्रेष्ठ ज्ञान और चरित्रकी उच्चता द्वारा सर्वसाधारणसे आदर प्राप्त करना।

(१०) दूसरे पुरुषोंको उच्च चारित्रवान बनानेका प्रयत्न करना।

इन नियमोंका सदैव पालनेका उन्हें आदेश दिया। जनताके बालकोंको शिक्षण देना, उनके वैवाहिक कार्योंको सम्पन्न कराना और अन्य श्रेष्ठ क्रियाओंके करानेकी व्यवस्था रखनेका कार्य उनके लिए सौंपा, फिर उन्हें उत्तम भोजन और वस्त्रोंका दान दिया।

उन्होंने क्षत्रियोंको अपने सदाचारकी रक्षा रखते हुए राज्यनीति और धर्मशास्त्रके अध्ययनका उपदेश दिया और आत्मरक्षण, प्रजापालन तथा अन्याय दमन करनेका विधान बनलाया।

सम्राट् भरतने भगवान् ऋषभदेवकी निर्वाण भूमिपर विशाल चैत्यालय भी स्थापित किये। और उनमें योगेश्वर ऋषभकी महान् मूर्तिको स्थापित किया।

उनके चारों ओर एक बड़ी भीड़ एकत्रित हो गई। यह कार्य उनके उद्देश्यके विरुद्ध थे, परन्तु इनसे योगीश्वर ऋषभका हृदय शोभित नहीं हुआ। उन्होंने इन बातोंपर लक्ष्य तक नहीं दिया, वे अपनी भावनामें मग्न थे। अपने उद्देश्यके पथपर अडिग थे इस तरह चलते हुए वे राजपथपर उपस्थित हुए।

सोमप्रभ और श्रेयांसने उन्हें दूरसे आते देखा। भक्ति विनय नम्रतासे उन्होंने चरणमें प्रणाम किया उनकी पूजाकी, चरणोंका प्रक्षालन किया और उनकी चरणरजको अपने मस्तक पर चढ़ा कर अपनेको कृतार्थ समझा। फिर वे उनके मनकी भावना जाननेके लिए और उनकी आज्ञा चाहनेके लिए उनके सामने नतमस्तक खड़े हो गये।

महात्मा वृषभने कुछ नहीं चाहा कुछ याचना नहीं की। जैन साधु कुछ नहीं चाहते कुछ याचना नहीं करते, भोजन तक भी वे नहीं चाहते, यह भी गृहस्थकी इच्छा पर अवलंबित है। वह उन्हें भक्तिसे अयाचित वृत्तिसे देगा वे उसे अनुकूल होने पर लेंगे, नहीं तो नहीं लेंगे। धन, पैसा और वैभव तो उनके लिए उपसर्ग है। जिसका वे त्याग कर चुके उसकी चाहना कैसी? जिस पथसे वे आगे बढ़ चुके उस पथसे फिर वापिस लौटना कैसा?

धर्म संकटका यह समय था, सभी निस्तब्ध थे, कोई सोच नहीं सकते थे कि इस समय क्या करना? कुछ क्षण इस तरह बीत गए।

श्रेयांसने सोचा यह तपस्वी कुछ नहीं चाहेंगे न कुछ अपने आप कहेंगे तब इस समय क्या करना! उनकी विचारक बुद्धिने उनका साथ दिया, उन्होंने इस समयकी उलझनको शीघ्र ही सुलझा

लिया । इन्हें भोजन चाहिए यह समय भोजनका ही है, फिर पवित्र-पदार्थ भी होना चाहिये पवित्रतके साथ ऐसा भी हो जो इनके शरीरको साता भी दे सके वे सोच चुके थे । उनका हृदय हर्षसे भर गया हृदयहीमें बोले मेरा सौभाग्य है । आज मैं इन तपस्वीको भोजन दूंगा पवित्र भावनासे उनका मन भर गया । भक्तिके आवेशने उन्हें गद् गद् कर दिया, वे शीघ्र ही बोले—भगवन् ! विराजें, आहार पवित्र है ग्रहण करें । फिर अपने भाई सोमप्रभ और रानी लक्ष्मी-मतीके साथ २ उन्होंने ताजे गन्नेके रसका आहार दिया, अनुकूल समझकर महात्माने उसे ग्रहण किया । वे तुष्ट हुए, इसी समय महात्माके भोजन दानके प्रभावसे सारे नगरमें जय जय शब्द गूंज उठा, देवता प्रसन्न हुए, और प्रकृतिने उनके कार्यको सराहा, गगनसे पुष्प वृष्टि होने लगी, मलय—वायु बहने लगा और मानवोंके मन हर्षसे फूल उठे ।

श्रेयांस और सोमप्रभने तपस्वी ऋषभदेवको भोजन दे अपनेको कृतार्थ समझा भोजन ले तपस्वी वनको चल दिए और आत्मध्यानमें तन्मय होगये ।

आजकी जनताकी दृष्टिमें इस आहारदानका कोई महत्व न हो और इस घटनाकी ओर कुछ भी ध्यान न दिया जाए । आजका सुशिक्षित समाज और अपनी विद्वत्ताको सर्वश्रेष्ठ समझनेवाले लोग इसे एक साधारण घटना समझकर भले ही भुलादें, लेकिन उस समयकी परिस्थितियों और लोक प्रणालियोंका जिन्होंने अध्ययन किया है वे इस घटनाके महत्वको अवश्य मानेंगे ।

श्रेयांस द्वारा दिए गए भोजन दानका यह अभूत पूर्व दृश्य

हस्तिनापुरकी जनताने अपने जीवनमें आज प्रथमबार ही देखा था। उन्होंने इसे बड़ा महत्वपूर्ण समझा, और समस्त जनताने एकत्रित होकर उनके इस दानकी प्रशंसा की। वे बोले—राजकुमार, हम लोग यह समझ नहीं सके थे कि इस समय हमें क्या करना चाहिए? यदि आज आपने उन महात्माको भोजन दान न दिया होता तो उन्हें भूखा ही लौटना होता और हम लोगोंके लिए यह बड़े कलंककी बात होती। आजसे छ मास पहले अयोध्यासे उन्हें भूखा ही लौटना पड़ा था, और छह मास कठिन अनाहारक व्रत फिरसे लेना पड़ा था। हम लोग यह नहीं जानते थे कि उन्हें कौनसी वस्तु किस तरह देना चाहिए? आपके बढ़ते हुए ज्ञानने यह सब कुछ समझा अतः आप हमारे धन्यवादके पात्र हैं। फिर हर्षसे फूली हुई हस्तिनापुरकी जनताने इस दिनको चिरस्मरणीय बनानेके लिए महोत्सव मनाया। इस महोत्सवमें चक्रवर्ती भरतने उपस्थित होकर श्रेयांसकुमारको अभिनंदन पत्र प्रदान किया। उपस्थित जनताने दानके विशेष नियम और उपनियम जाननेकी इच्छा प्रकट की। कुमार श्रेयांसने अपने बढ़े हुए ज्ञानके प्रभावसे दानकी पद्धतियोंका विशेष परिचय कराया। वे बोले—नागरिको! आगे चल कर साधु प्रथाकी बहुत वृद्धि होगी और तपस्वी लोग भोजनके लिए नगरमें आया करेंगे इन तपस्वियोंको किसी तरहकी इच्छा नहीं होगी? यह धन, वैभव अथवा किसी वस्तुको नहीं चाहेंगे ये तो केवल अपने शरीर रक्षणके लिए भोजन चाहेंगे। इन्हें आदरसे अपने घर बुलाकर श्रद्धा और भक्तिसे अनुकूल भोजन देना होगा। इन साधुओंको शरीरसे मोह नहीं होता, इन्हें तो केवल आत्मकल्याणकी धुन रहती है। लेकिन अपने

भ० ऋषभदेवको राजा श्रेयांस अपने भ्राता सोमप्रभ
और पत्नी सहित इक्षुरसका आहार दे रहे हैं।
आकाशमें देवों द्वारा पुष्पवृष्टि।

शरीरको दूसरोंके उपकारके लिए वे स्थिर रखना चाहते हैं और आत्मध्यानके लिए जीवित रहते हैं ।

इसके लिए किसीको न सताकर भोजन लेते हैं । वह भोजन भी ऐसा हो जो खास तौरसे उनके लिए न बनाया गया हो, क्योंकि वे अपने लिए किसी गृहस्थको आरंभमें नहीं डालना चाहते । इसलिए हरएक गृहस्थका कर्तव्य है कि वह उन्हें भोजन दे । इसके सिवाय आगे ऐसा भी समय आयेगा जब कुछ मनुष्य अपने लिए पूरा भोजन उपार्जन न कर सकेंगे, और वे भोजनकी इच्छासे किसीके पास जायेंगे । तब आपका कर्तव्य होगा कि आप उन भूखे पुरुषोंको चाहे वे कोई भी हों भोजन दान दें । आगे चलकर जब कर्म-क्षेत्रका विस्तार होगा उसमें आपको दूसरोंकी सहायताका भार लेना पड़ेगा । कुछ व्यक्ति ऐसे होंगे जिनके पास भोजनकी कमी हो अथवा जो अपने बालकोंके लिए योग्य शिक्षाका प्रबंध न कर सकें, रोग पीड़ित होनेपर वे अपने उपचारोंमें असमर्थ हों, और बलवान पुरुषों द्वारा सताए जानेपर अपने जीवनकी रक्षा न कर सकें । ऐसे पुरुषोंकी सहायता भी आप लोगोंको करना होगी । इस सहायताके चार विभाग होंगे, जिन्हें चार दानके नामसे कहा जायगा । एक विभाग भोजन दानका होगा, दूसरा विद्यादान, तीसरा औषधिदान और चौथा अभय दान ।

दान देकर अपने आपको बड़ा नहीं समझना होगा । दानको केवल मानव कर्तव्य ही मानना पड़ेगा । अपनी शक्तिके माफिक थोड़ी अथवा अधिक जितनी सहायता हम देसकें उससे जी नहीं चुराना

होगा, तभी हम लोकमें शांति और सुख स्थिर रह सकेंगे, और हमारे नगर और ग्रामोंमें कोई भूखा, रोगी, अज्ञानी और पीड़ित नहीं रह सकेगा। हमें प्रतिदिन अपने लिए कमाये हुए धनमेंसे कुछ अंश इस दानके लिए बचा कर रखना होगा, समय पर उसका सदुपयोग करना होगा।

दानकी इन पद्धतियोंको उपस्थित जनताने समझा और उस दिनको चिर-स्मरणीय बनानेके लिए उसे 'अक्षय-तृतीया' का नाम दिया।

चक्रवर्ती भरतने उपस्थित जनताके सामने श्रेयांसकुमारको दानवीर पदसे विभूषित किया।

उस समयकी बनाई हुई दान व्यवस्था समयके साथ फूली फली और बढ़ी, और आज तक उसका प्रचार होता रहा। आजका मानव समाज भी उनकी उस दिनकी प्रचारित दान प्रथाका आभारी रहेगा।

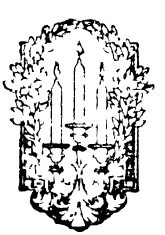

यसे मुझे ईर्षा नहीं है। फिर उन्हें मेरी स्वाधीनतासे द्वेष क्यों है? वे मेरी स्वाधीनता क्यों नहीं देखना चाहते? क्या मेरी स्वाधीनता छीने बिना उनका चक्रवर्तित्व स्थिर नहीं रह सकता? इसका क्या अर्थ है कि भारतके सभी राजाओंने उनका प्रभुत्व स्वीकार कर लिया है और अपनी स्वाधीनता खो दी है तो मैं भी उसे नष्ट हो जाने दूं? वे राजा लोग यदि आजादीका रहस्य नहीं समझते उनके हृदय यदि इतने निर्बल होगए हैं तो मैं उसके रहस्यको समझता हुवा भी क्यों गुलाम बनूं? नहीं, यह कभी नहीं होगा, भले ही इसके लिए मुझे अपने भाईका विरोधी बनना पड़े और चाहे सारे संसारका विरोध करना पड़े, मैं उसे सहर्ष स्वीकार करूंगा, और आजादीका मूल्य चुकाऊंगा।

उन्होंने उसी समय पत्रका उत्तर लिखा—

प्रिय अग्रज! अभिवादनम्।

भारत विजयके उपलक्षमें बधाई! एक भाईके नाते मुझे इस विजयोत्सवमें अवश्य सम्मिलित होना चाहिए था लेकिन नहीं होरहा हूं इसका उत्तर आपके पत्रका अंतिम भाग स्वयं दे रहा है। मैं एक स्वतंत्र राजा हूं, मेरे पूज्य पिता ऋषभदेवजीने मुझे यह राज्य दिया है, फिर मुझे आपकी आधीनता स्वीकार करनेकी क्या आवश्यक्ता? आप मेरी स्वाधीनता नष्ट करने पर तुले हुए हैं। ऐसी परिस्थितिमें आपकी कोई भी आज्ञा पालन करनेसे मैं इन्कार करता हूं। आप मेरे बड़े भाई हैं। भाईके नाते मैं आपकी प्रत्येक सेवाके लिए तैयार हूं, लेकिन जब मैं सोचता हूं कि आप चक्रवर्ति हैं और इस चक्रवर्तिके प्रभुत्वके नाते मुझपर अपनी आज्ञा चलाना चाहते हैं तब आपकी

सेवा करना मैं अपना अपमान समझता हूं । मैं जानता हूं मेरी यह स्पष्टता आपको अवश्य खलेगी लेकिन इसके सिवाय मेरे पास और कोई प्रत्युत्तर नहीं है । आपका—बाहुबलि ।

पत्र लिखकर उन्होंने उसे बंद किया और दूतको देकर उसे चक्रवर्तिके लिए देनेको कहा—

दूतने पत्र ले जाकर चक्रवर्तिको दिया । उन्होंने पत्र पढ़ा । पढ़ते ही उनका हृदय क्रोधसे प्रदीप्त होगया । वह बोल उठे, बाहुबलिकी इतनी धृष्टता ? वह मेरा भारत विजयी चक्रवर्तिका, प्रभुत्व स्वीकार नहीं करना चाहता ? एक साधारण राज्यके स्वामित्वका उसे इतना अहंकार है ? अच्छा मैं अभी उसका यह अभिमान शिखर टुकड़े २ कर दूंगा । यह कहते हुए उन्होंने बाहुबलिसे युद्ध करनेके लिए अपने प्रधान सेनापतिको सैन्य सजानेकी आज्ञा दी ।

चक्रवर्तिके विद्वान् मंत्रियोंने इस बन्धु विरोधको सुना । भाई भाईमें बढ़ती हुई इस युद्धाग्निको उन्होंने रोकनेका प्रयत्न किया । वे चक्रवर्तिसे बोले—सम्राट् ! आप राजनीति विशारद हैं, दोनों भाइयोंके परस्परके युद्धसे भीषण अनिष्ट होनेकी आशंका है । कुमार बाहुबलि न्यायप्रिय और विवेकशील हैं, इसलिए उनके पास एकबार दूत भेजकर फिरसे उन्हें समझाया जाय, यदि इसबार भी वे न समझें तो फिर सम्राट् जैसा उचित समझें वैसा हुक्म दें ।

मंत्रियोंकी सम्मतिको चक्रवर्तिने पसन्द किया और एक पत्र लिखकर उसे दूतको देकर बाहुबलिके पास भेजा । पत्रमें उन्होंने लिखा था—

प्रिय अनुज ! सस्नेहाशीर्वाद !

तुम्हारा पत्र मिला, पढ़कर आश्चर्य हुआ। तुम मेरे भाई हो, मैं चाहता था तुम्हारे सम्मानकी रक्षा हो और मुझे तुमसे युद्ध न करना पड़े। तुम स्वयं आकर मेरा प्रभुत्व स्वीकार कर लो, किन्तु मैं देख रहा हूं, तुम बहुत उद्दंड होगए हो। मैं तुम्हें समझा देना चाहता हूं, कि राज्यनीतिमें बंधुत्वका कोई स्थान नहीं है वहां तो न्यायकी ही प्रधानता है। न्यायतः भारतकी प्रत्येक भूमिपर मेरे अधिकारको मानकर ही कोई राजा अपना राज्य स्थिर रख सकता है, तुम यह न समझना कि बंधुत्वके आगे मैं अपने न्याय अधिकारोंको छोड़ दूंगा।

एकबार मैं तुम्हारी उद्धतताके लिए क्षमा प्रदान करता हूं, और मैं तुम्हें फिर लिखता हूं कि अब भी यदि तुम मेरे सामने उपस्थित होकर मेरा प्रभुत्व स्वीकार कर लोगे, तो तुम्हारा राज्य और सम्मान इसी तरह सुरक्षित रहेगा। लेकिन यदि तुमने फिर ऐसा धृष्टता की तो मुझे यह सहन नहीं होगा और उसके लिए मुझे तुमसे युद्ध करना होगा। मैं तुम्हें चेतावनी देता हूं। तुम्हारे सामने दो चीजें उपस्थित हैं, आधीनता अथवा युद्ध। दोनोंमेंसे तुम जिससे भी चाहो स्वीकार कर सकते हो। तुम्हारा—भरत (चक्रवर्ति)।

दूतने पत्र लाकर बाहुबलिको दिया, पत्र पढ़कर बाहुबलिका आंतरिक आत्म सम्मान जागृत हो उठा, लेकिन वे इतने बड़े युद्धका उत्तरदायित्व अपने ऊपर नहीं लेना चाहते थे इसलिए उन्होंने मंत्रियोंसे परामर्श कर लेना उचित समझा।

मंत्रियोंने कहा—महाराज ! हम युद्धके इच्छुक नहीं हैं, लेकिन

हमें अपनी आजादीकी भी रक्षा करना चाहिए है । यह प्रश्न जनता और देशकी स्वतंत्रताका है, इसके लिए हमें अपना सब कुछ बलिदान करनेसे नहीं हिचकना होगा । अपनी प्रजाको दूसरोंकी गुलामी करते हुए हम नहीं देख सकेंगे । हमें अपनी आत्म रक्षा करना होगी, उसका चाहे कितना मूल्य देना पड़े ।

बाहुबलिजी भी यही चाहते थे. उन्होंने मंत्रियोंके उत्तरकी प्रशंसा और फिर उत्तर पत्र लिखना प्रारंभ किया ।

प्रिय अग्रज, अभिवादनम् ।

पत्र मिला । जीवन रहते हुए मैं किसीकी आधीनता स्वीकार करना नहीं चाहता यह मेरा निश्चित मत है । आपने मुझे युद्धकी धमकी दी है, और यदि आपको युद्ध ही प्रिय है, आप युद्ध करके मेरी स्वाधीनता नष्ट करनेमें ही अपना गौरव और न्याय समझते हैं, तो मैं इसके लिए तैयार हूं । मैं युद्धसे नहीं डरता । यह तो वीरोंका एक खेल है. इस आतंकका मेरे ऊपर कोई प्रभाव नहीं लेकिन मैं आपको चेतावनी देता हूं कि युद्धमें बाहुबलिका यदि कोई प्रतिद्वन्दी है, तो वह चक्रवर्ति ही हैं, फिर भी आप बहुत सोच समझ कर युद्धमें उतरें नहीं तो यह युद्ध आपको बहुत महंगा पड़ेगा ।

आपका—बाहुबलि ।

दूतको पत्र दिया वह शीघ्र ही उसे चक्रवर्तिके पास ले गया । उन्होंने पढ़ा, अग्निमें घृतकी आहुति पड़ी । उनके क्रोधका पारा अंतिम डिग्री तक पहुंच गया, नेत्र अग्निज्वालाकी तरह जल उठे, भुजाएं फड़क उठीं, वे अपने भड़कते हुए क्रोधको रोक नहीं सके ।

हूं इसी छोटेसे कांटेने उनके मनको व्यथित कर रखा है, मैं उनके हृदयके इस शूलको निकालूंगा।

चक्रवर्ति भरतका मन पहिलेसे ही बदल चुका था। राज्य लक्ष्मीका अब उन्हें वह मोह नहीं रह गया था, वे शीघ्र ही उनके चरणोंमें नत होकर बोले—योगीराज! यह पृथ्वी स्वतंत्र है, इसका कोई भी स्वामी नहीं है। मानवके मनका अहंकार ही इस निश्चल वसुंधरा-को अपना कहता है, मेरे मनका अहंकार अब गल गया है। आप अपने हृदयके कांटेको निकाल दीजिए यह समस्त भूमि आपकी है, भरत तो अब आपका दास है, उसका अब अधिकार ही क्या रह गया है?

भरतजीके सरल शब्दोंने योगेश्वरके हृदयका शूल निकाल कर फेंक दिया, उन्हें उसी समय कैवल्यके दर्शन हुए। केवलज्ञान प्राप्त कर उन्होंने विराट विश्वके दर्शन किए।

देवताओंने उनकी पवित्र आत्मापर अपनी श्रद्धांजलि अर्पितकी और उनकी चरण रजको मस्तक पर चढ़ाकर अपने जीवनको सफल समझा।

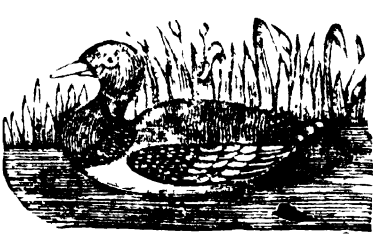

[६]

योगी सगरराज ।

[भोगमार्गसे निकलकर योगमें आनेवाले महापुरुष]

(१)

राजा सगरका राज्य दरबार लगा हुआ था, वे सिंहासनरूढ़ थे। रत्नोंकी प्रभासे उनका सिंहासन चमक रहा था। मणि और मोतियोंके सुन्दर चित्र उनमें अंकित किए गए थे। सिंहासनके एक ओर प्रधान-मंत्री और दूसरी ओर प्रधानसेनापति थे। इसके बाद मंत्री और अंतरंग परिषदके सभासद थे। देश और विदेशोंके नरेश आकर उन्हें भेंट प्रदान करते थे, राजा उन्हें आदरसे योग्य स्थानपर बैठनेकी आज्ञा

देकर उनका सन्मान करते थे। चारणगण उनके अटूट ऐश्वर्यका मधुर शब्दोंमें गान कर रहे थे—वे कह रहे थे—पृथ्वीपति! "आपके प्रबल पराक्रमसे अखिल भारतके राजाओंके हृदय कंपित होते हैं, आपके ऐश्वर्य और वैभवकी तुलना करनेकी शक्ति कुबेरमें नहीं है, देवबालाएं आपके ऐश्वर्य निवासमें रहनेकी अभिलाषा रखती हैं। भारतमें ऐसा कौन व्यक्ति है जो आपके सामने नतमस्तक हुआ हो? जिसकी ओर आपकी कृपा-दृष्टि होती है वह क्षणमें महान् बन जाता है।"

राजा सगर अपने अनंत वैभव और अखंड प्रतापके गीतोंको सहर्ष सुन रहे थे। महामंडलेश्वर राजाओंने उनकी कृपा-प्राप्तिके लिए विनीतभावसे उनकी ओर देखा, उन्होंने मंत्रियोंसे कार्य सम्बन्धी कुछ परामर्श किया, जनताके सुख दुखकी बातें सुनीं और दरबार समाप्त किया।

पार्श्व रक्षकोंके साथ उन्होंने राज्यमहलमें प्रवेश किया उसी समय उनके कानोंमें एक मधुर ध्वनि गूंज उठी—

पथिक मायामें मग्न न होना।
मिथ्या विश्व प्रलोभनमें रे, आत्मशक्ति मत खोना।
मोहक दृश्य देख यह जगका इस पर तनिक न फूल।
मतवाला होकर रे मानव! इसमें तू मत भूल।
पथिक! मायामें मग्न न होना॥

गीत तन्मयताके साथ गाया जा रहा था, चक्रवर्तिने उसे सुना। गीतकी मधुर ध्वनि पर उनका मन मचल उठा, वे उसके पदलालित्य-पर विचार करने लगे। उन्होंने जानना चाहा कि यह मधुर गीत कौन

गा रहा है? विचार करते हुए अपने राज्य—महलमें प्रवेश कर चुके थे। यौवनके वेगसे उन्मत्त सुन्दरियोंने उनकी ओर सस्नेह देखा, मधुर भावोंकी झंकार उठी, वे उनके स्नेहबंधनमें जकड़ गए।

(२)

योगीराज चतुर्मुखजी नगरके उद्यानमें पधारे थे। उनका कल्याणकारी उपदेश सुननेके लिए नगरकी जनता एकत्रित होकर जा रही थी। सम्राट् सगरने भी उनका आना सुना, वे उनके उपदेशसे वंचित रहना नहीं चाहते थे, मंत्रियों और सभासदोंके साथ वे योगीराजका उपदेश सुनने गए।

मणिकेतु नामक देव भी उनका उपदेश सुनने आया था, वह राजा सगरका पूर्वजन्मका साथी था, उसने इन्हें देखा और पहिचाना। पूर्वस्नेहके तार झंकरित हो उठे। पूर्वजन्मकी वे क्रीड़ाएं, विनोद लीलाएं और स्नेह वार्तालाप हृदय—पटल पर अंकित हो उठीं। उसे वह प्रतिज्ञा भी याद आई जो उन्होंने एक समयकी थी। कितना मधुमय समय था, वह दोनों वसंतकी लीला देख रहे थे, अचानक एक वृक्ष-पातसे उनका विनोद भंग हो उठा था, उस समय उन दोनोंने अपने परलोकके संबंधमें सोचा था। फिर उन्होंने आपसमें निर्णय दिया था। हम लोगोंको भी यह स्वर्गका स्थान छोड़ना होगा तब जो व्यक्ति मानव शरीर धारण करेगा, देवस्थानमें रहनेवाले देवका कर्तव्य होगा कि संसारकी मायामें मग्न होनेवाले उस अपने मित्रको आत्मकल्याणके पथ पर चलानेका प्रयत्न करे। आज मणिकेतुके सामने वह प्रतिज्ञा प्रत्यक्ष होकर खड़ी थी। उसने सोचा—

"सगरराज, वैभवके नशेमें मदोन्मत्त हो रहा है, विलासकी मदिरा पीते तृप्त नहीं होता। उसने अपने आपको इन्द्रियों और मनकी आज्ञाके आधीन कर दिया है, वह अपने कर्त्तव्यको बिलकुल भूल गया है।"

"पूर्वजन्मकी प्रतिज्ञाके अनुसार मुझे उसके इस झूठे स्वप्नको भंग करना होगा, मुझे उसे लोक-कल्याणके पथ पर लगाना होगा। आज यह अवसर प्राप्त है, मैं इसे जाग्रत करनेका प्रयत्न करूंगा।"

योगेश्वरका उपदेश समाप्त होने पर वह सगरराजसे मिला और अपने पूर्वजन्मका परिचय दिया। पूर्वजन्मके बिछुड़े हुए युगल मित्र आज मिलकर अपने आपको भूल गए। उन्होंने उस आनन्दका अनुभव किया जिसका अवसर जीवनमें कभी ही आता है। फिर उन्होंने अपने जीवनकी अनेक घटनाओंका परस्पर विनिमय किया। सब बातें समाप्त हो जानेके बाद मणिकेतुने पूर्वजन्ममें की हुई प्रतिज्ञाकी याद दिलाई और साथ ही साथ उनसे कहा—सम्राट्! आज आप महान् ऐश्वर्यके स्वामी हैं यह गौरवकी बात है। आपके जैसा वैभव, सौन्दर्य और विलासकी सामग्रिएं किसी विरले ही पुण्याधिकारीको मिलती हैं; किन्तु इनका एक दिन नष्ट होना भी निश्चित है। यह वैभव और साम्राज्य मिलकर बिछुड़नेके लिए ही है। इसके उपयोगसे कभी तृप्ति नहीं होती। मानव जितना अधिक इसकी इच्छाएं करता है और जितना अधिक अपनेको इसमें व्यस्त कर देता है उतना अधिक वह अपनेको बंधनमें पाता है और अतृप्तिका अनुभव करता है। अब तक आपने स्वर्गीय भोगोंके पदार्थोंका सेवन करके अपनी

लालसाओंको तृप्त करनेका प्रयत्न किया है किन्तु क्या वे तृप्त हुई हैं? नहीं। सम्राट् ! इच्छा पूर्णकी लालसामें मग्न हुआ मानव अपनी अपूर्ण कामनाओंको साथ लेकर ही संसारसे कूचकर जाता है। आपका कर्तव्य है कि जबतक आपकी इन्द्रियां बलवान हैं उन्होंने आपको नहीं छोड़ा है, और जबतक आपकी शक्ति और सामर्थ्य आपसे विदा नहीं मांग चुकी है, उसके पहिले आप इस विलासकी आंधीको शान्त कर लें; नहीं तो यदि फिर सामर्थ्य नष्ट हो जाने पर, विषयोंने ही आपको त्याग दिया तो फिर आपके ज्ञान और विवेकका क्या मूल्य रहेगा। इसलिए आप सब संसारकी चिंताएं छोड़कर लोककल्याणकी चिंता करें, और जनताके हितके लिए सर्वस्व त्याग करें।

सम्राट्ने मित्र मणिकेतुके परामर्शको सुना, लेकिन उससे वे प्रभावित नहीं हुए, उनके मनपर उसकी बातोंका कोई असर नहीं हुआ। उनका मन तो इस समय वैभवके जालमें फंसा था, पुत्रमोहमें मोहित होरहा था और विलासका नशा अभी उनपर चढ़ा था, फिर उन्हें त्यागकी बात कैसे पसन्द आती ?

मणिकेतु उनके अंतरङ्ग भावोंको समझ गया, उसने अंतमें अपने कर्तव्यकी स्मृति दिलाते हुए उनसे कहा—मित्र! मेरा कर्तव्य था कि मैं तुम्हें सचेष्ट करूं। तुम इस समय ममत्वमें फंसे हुए हो इसलिए मेरी बातोंकी वास्तविकताको नहीं समझ रहे हो, लेकिन एक दिन आएगा जब तुम इसे समझोगे। अच्छा. अब मैं आपसे विदा लेता हूं, यदि आपका मन चाहे तो कभी मेरा स्मरण कर लेना। मणिकेतु चला गया और सम्राट् सगर भी अपने नगरको लौट आए।

अब नहीं जगेगा। इसके प्राणोंको यमराज छीन ले गया है. वह बड़ा दुष्ट है वह किसीकी कुछ नहीं, सुनता उसके हृदयमें किसीके लिए करुणा नहीं है। अब तुम इसके जगानेका उपाय मत करो, यह मृतक होगया है। जब मैंने यह सुना तब मेरे हृदयको बड़ा शोक हुआ और अब मैं आपके पास आया हूं। आप उस दुष्ट यमराजसे मेरे प्रिय पुत्रके प्राणोंको लौटया दीजिए। मैं आपकी शरण हूं आप मेरी रक्षा कीजिए।

वृद्धकी बात सुनकर सम्राट्को उसके भोलेपन पर बड़ा तरस आया वे उसकी सरलतासे बहुत प्रभावित हुए और उसे समझाते हुए बोले— हे वृद्ध महोदय! आप बड़े ही सरल हैं, आप यह नहीं जानते कि मृत्युके द्वारा छीने गए मनुष्यको बचानेकी किसीमें ताकात नहीं है, महोदय! मृत्यु तो यह नहीं देखती कि वह जवान है, अथवा किसीका इकलौता पुत्र है। उसकी आज्ञा संसारी मनुष्य पर अखंड रूपसे चलती है। चाहे सम्राट् हो अथवा दीन भिखारी, समय आनेपर वह किसीको नहीं छोड़ता। तुम्हारे पुत्रकी आयु समाप्त होगई है, वह मृतक होगया है। मृतकको जिलानेकी ताकत किसीमें नहीं है, इस लिए अब तुम्हें उसके प्राणोंका मोह त्याग कर शांतिकी शरण लेना चाहिए।

सम्राट्के वचनोंसे वृद्धको शांति नहीं मिली। वह बोला— सम्राट्! मेरे हृदयको पुत्र प्राप्तिके विना शांति नहीं। मेरा हृदय पुत्र वियोगको सहन करनेके लिए किसी तरह भी समर्थ नहीं है। पुत्रके मिलनेकी इच्छासे मैं आपके पास आया था, उपदेश सुननेके

लिए नहीं, लेकिन मैं देखता हूं, मुझे आपके यहांसे निराश होकर लौटना पड़ेगा । आप चक्रवर्ति सम्राट् होकर भी मेरी रक्षा नहीं कर सकेंगे ? सम्राट् ! आप ऐसा न कीजिए, आप शक्तिशाली हैं, आप उस यमराजसे अवश्य ही युद्ध कीजिए और मेरे पुत्रको लौटा दीजिए ।

वृद्ध तुम नहीं समझते ? यमराजसे युद्ध करना मेरी शक्तिसे बाहर है अब तुम्हारा रोना धोना व्यर्थ है उसे बन्द कीजिये और इस वृद्धावस्थामें शांतिकी शरण लीजिए । महोदय ! अब आप पुत्र-मोहको छोड़िए । यह ममत्व ही आत्मबंधनकी वस्तु है । तुम यह नहीं जानते कि सारा संसार स्वार्थमय है, सांसारिक स्नेहके अंदर स्वार्थ ही निहित रहता है नहीं तो वास्तवमें न कोई किसीका पुत्र है और न पिता है । न कोई किसीकी रक्षा करता है और न किसीको कोई मारता है । यह सब संसारका माया मोह है, जिसके कारण हम ऐसा समझते हैं । आपको तो अब मोह त्याग कर प्रसन्न होना चाहिए । आज आपकी आत्मोन्नतिके मार्गका कंटक निकल गया, अब आप बंधन मुक्त हैं । आजसे अब अपने जीवनको सफल बनानेका पयत्न कीजिए । यह मानव जीवन आत्म-कल्याणका श्रेष्ठ साधन है, उसे पुत्र मोहमें पड़कर नष्ट मत कीजिए । अबतक पुत्र मोहके कारण आप अपना कल्याण न कर सके, लेकिन अब तो आप स्वतंत्र हैं इसलिए शोक त्याग कर साधु दीक्षा लीजिए और आत्मकल्याणमें संलग्न हो जाइए ।

सम्राट् ! वृद्धको इस तरह सान्त्वना दे रहे थे इसी समय अपने भाइयोंकी मृत्युसे शोकित राजकुमारने प्रवेश किया । उसका मन बेकाबू हो रहा था । उसने आते ही अपने सभी भाइयोंको खाई खोदते

हुए मृत्यु प्राप्त होनेका समाचार सुनाया । प्रिय पुत्रोंकी मृत्यु सुनकर सगरराज मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े । जब वह चैतन्य हुए तब उन्होंने देखा कि सामने वृद्ध खड़ा हुआ है । वह कह रहा है—सम्राट् ! उपदेश देना सरल है लेकिन उसका पालन करना कठिन है । दूसरोंको पथ बतला देना कुछ कठिन नहीं परन्तु उसपर स्वयं चलना टेढ़ी खीर है । आप मुझे तो उपदेश दे रहे थे आत्म कल्याण करनेका लेकिन आप खुद पुत्र वियोगकी बात सुनते ही बेहोश होगए ।

वृद्धके इस व्यंगका सम्राट्के हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा । उनके मनसे मोहका बोझ उतर गया । वे सोचने लगे—वास्तवमें वृद्धका कथन सत्य है । सांसारिक मोह महाबलवान है, मेरे ऊपर भी इस मोहका प्रबलचक्र चल रहा है, और मैं उसीमें चक्कर लगा रहा हूं । आज मेरा मोह नशा भंग होगया । फिर वे वृद्धसे बोले—वृद्धमहोदय ! सम्राट् जो कहते हैं उसे करते हैं । बेशक मोहने मुझे बेहोश बना दिया था, लेकिन अब मैं स्वस्थ हूं । मैंने आत्मकल्याण और लोक सेवाके पथ पर चलना निश्चित कर लिया है, चलिए आप भी मेरे इस पथके पथिक बनिए ।

सम्राट्के शब्दोंसे वृद्ध चौंक पड़ा, वह उठा और बोला—सम्राट् ! आज आप उस पथपर आए हैं, जिसपर कुछ समय पूर्व मैं आपको लाना चाहता था । आप मुझे नहीं पहचानते, मैं आपका पूर्वजन्मका साथी वही मणिकेतु हूं । मैंने आपको लोककल्याणके मार्ग पर लानेके लिए ही यह सब कार्य किया है । मैंने ही खाई खोदते हुए आपके पुत्रोंको बेहोश कर दिया था, और मैं ही वृद्धका रूप रखकर यहां

आया हूं। पूर्वजन्मकी प्रतिज्ञा पूर्ण करना मेरा कर्तव्य था, मैंने मित्रके एक कर्तव्यको पूर्ण किया है। मेरा कार्य अब समाप्त होगया, आप अब आत्म-कल्याणके पथ पर हैं।

मैं अब जाता हूं, आप अपने निर्धारित पथ पर चलकर लोक-कल्याण भावनाको सफल बनाइए। बेहोश हुए आपके पुत्रोंको मैं होशमें लाता हूं। यह कह कर उसने वृद्धका रूप बदल डाला। अब वह मणिकेतुके रूपमें था। सगरराजने उसे हृदयसे लगा लिया और उसके मैत्री धर्मकी प्रशंसा करते हुए कहा—मणिकेतु! तुम मेरे पूर्व जन्मके सच्चे मित्र हो। मित्रका यह कर्तव्य है कि वह सत्य-मार्गका प्रदर्शन करे और अपने मित्रको श्रेष्ठ सलाह दे। तुमने मोह—जालमें बेहोश रहनेवाले मित्रको समय रहते सचेत कर दिया इससे अधिक मैत्री धर्म और क्या हो सकता है? अब मैं कल्याणपथका पथिक हूं, मुझे अब कोई उससे उन्मुख नहीं कर सकता। यह कहते हुए सम्राट्का हृदय मित्र प्रेमसे भर आया, वे फिर एकबार हृदयसे मिले।

मणिकेतु अपना कार्य समाप्त करके देवलोक चला गया और सम्राट् सगर योगी सम्राट् बन गए।

सौंप और साधु दीक्षा ग्रहण की। अयोध्याका सौन्दर्य चक्रवर्ति सनत्कुमारके विना अब शून्य सा हो गया था।

(५)

सम्राट् सनत्कुमार, नहीं महात्मा सनत्कुमार—योगीश्वर सनत्कुमार, अब योगसाधनामें तन्मय थे। तपश्चरणमें निरत थे। उन्होंने इस जन्मके सांसारिक बंधनोंको तोड़ डाला था, लेकिन पूर्वजन्मके संस्कारोंको वह नहीं तोड़ पाए थे, वे अभी जीवित थे। पूर्वकर्म फल पाना अभी शेष था, वह प्रकटमें आया, उन्हें कोढ़ हो गया। उनका वह सुन्दर और दर्शनीय शरीर कोढ़की कठिन व्याधिसे आज ग्रसित था, सारे शरीरसे मलिन मल और रक्त निकल रहा था। तीव्र दुर्गंधिके कारण किसीको उनके निकट जानेका साहस नहीं होता था, लेकिन इसका उन्हें कोई खेद नहीं था, कोई ग्लानि नहीं थी। वे शरीरकी अपवित्रताको जानते थे, वे निर्ममत्व थे, शरीरकी बाधा उन्हें आत्म-ध्यानसे विलग नहीं कर सकी थी। उनकी आत्मतन्मयता पर उसका कोई प्रभाव नहीं था, वे पूर्वकी तरह स्थिर थे।

देवताओंको उनकी इस निर्ममत्वता पर आश्चर्य हुआ। उन्होंने जानना चाहा, सनत्कुमारका यह निर्ममत्व बनावटी तो नहीं है, वह जो कुछ बाहरसे दिखला रहे हैं वह उनके अंदर भी है अथवा नहीं, उन्हें परीक्षणकी कसौटी पर कसना चाहा।

"हम वैद्य हैं, व्याधि कैसी ही भयानक क्यों न हो भले ही वह कोढ़ ही क्यों न हो हम उसे निश्चयसे नष्ट करनेकी शक्ति रखते

है" वह ध्वनि योगीराजके कानों पर बारबार आघात करने लगी। उन्हें इससे क्या था, वे तो आत्म-समाधि मग्न थे।

निश्चित समय पर योगीश्वरने अपना ध्यान समाप्त किया। वैद्यराज उनके सामने उपस्थित थे। उनके चरणोंमें पड़कर बोले— योगीश्वर! मानता हूं आपके ध्यानमें यह व्याधि कोई बाधा नहीं पहुंचाती होगी, लेकिन व्याधि तो व्याधि ही है, उसकी वेदना तो आपको होती ही होगी। मेरे रहते हुए आपकी यह व्याधि बनी रहे यह बड़े दुःखकी बात होगी। योगीश्वर! आप मुझे आज्ञा दीजिए। आपकी यह व्याधि कुछ क्षणोंमें ही मैं नष्ट कर दूंगा।

ऋषीश्वरने सुना—वे बड़ी शांतिसे बोले—वैद्यराज! जान पड़ता है आप बड़े दयालु हैं आपको मेरी व्याधि नष्ट करनेकी बहुत चिन्ता हो रही है। मैं समझता हूं आप वास्तवमें ऐसे वैद्य हैं जो मेरी व्याधिको नष्ट कर सकेंगे।

'आपकी कृपासे मुझमें व्याधि नष्ट करनेकी शक्ति मौजूद है' वैद्य रूपधारी देवताने कहा।

वैद्यराज! लेकिन क्या मेरी मूल व्याधिको आप पहचानते हैं? जिसकी वजहसे यह ऊपरी व्याधि जिसे देखकर आपका मन करुणासे पिघल रहा है, जीवन पा रही है उस व्याधिका भी निदान कर सकेंगे? वैद्यराज! यह व्याधि तो कुछ नहीं मुझे उसी व्याधिके नष्ट करनेकी चिन्ता है—वह महाव्याधि है 'जन्म-मरण' उसका मुख्य कारण है कर्मफल। क्या आपमें उसके नष्ट करनेकी शक्ति है?

वैद्य अब मौन था, योगी सनत्कुमारके प्रश्नका उसके पास कोई

उत्तर नहीं था। वह अब अपनेको अधिक समय तक प्रछन्न नहीं समझा, वह पराजित हो चुका था। महात्माके चरणोंमें पड़कर वह बोला—महात्मन्! क्षमा कीजिए। महावैद्यका परीक्षण करने मैं आया था वैद्य बनकर। मैं आपकी व्याधिको निर्मूल करना तो दूर उसका निदान भी नहीं जानता। हम व्याधिके विनाशक तो आप हीं हैं। आपमें ही कर्मफल और जन्ममरण नष्ट करनेकी शक्ति है। मैं तो आपकी निस्पृहता देखने आया था उसे देख चुका। आपका योग साधन, आपकी आत्म तन्मयता, आपकी निर्ममत्वता आदर्श है, वास्तवमें आप निस्पृह योगी हैं। मैं तो आपका चरण सेवक हूं, आपका अपराधी हूं, क्षमाका पात्र हूं। प्रार्थना करके देव अपने स्थानको चला गया।

योगीराजने तीव्र कर्मके फलको योगकी प्रचंड उष्णतामें पका डाला, उसके रसको ध्यानाग्निसे नष्ट कर दिया। तीक्ष्ण व्याधिको वे पीगये, योगकी महान् शक्तिके सामने कर्मफल स्थिर नहीं रह सका वह जलकर भस्म हो गया। योगीराजने दिव्य आत्मसौन्दर्यके दर्शन किये, उसमें उन्होंने अपनेको आत्मविभोर करा दिया, उनका मानस पटल आत्म-सौन्दर्यकी उस अद्भुत प्रभासे जगमगा उठा था जो अविनश्वर थी, स्थायी थी और अमर थी।

[८]

महात्मा संजयंत ।

(सुदृढ़ तपस्वी)

(१)

गंधमालिनी देशकी प्रधान राजधानी वीतशोका थी । उसके अधीश्वर थे महाराजा वैजयन्त । उनका वैभव स्वर्गीय देवताओंकी तरह अतुलनीय था । वे अपने वैजयन्त नामको चरितार्थ करते थे । साहस और पराक्रममें भी वे एक ही थे । लक्ष्मीकी तरह महाभाग्या महारानी मन्यश्री उनकी प्रधान पटरानी थी ।

वैजयन्त न्याय और नीतिसे अपनी प्रजाका संरक्षण करते थे। वे उदारमना थे । विद्वानोंका योग्य सम्मान करके, सुहृद् बंधुओंको निःस्वार्थ प्रेमसे और आश्रितोंको द्रव्य देकर संतुष्ट रखते थे ।

अत्याचारियों और अन्यायके लिए उनके हाथमें कठोर दंड था

इसीलिए उनके राज्यमें व्यसनी और दुराचारी पुरुषोंका अस्तित्व नहीं था ।

उनके दो पुत्र थे—एक संजयन्त दूसरे जयंत । राज्य प्रांगणकी शोभा बढ़ाते हुए वे दोनों बालक दर्शकोंका मन मुग्ध करते थे। दोनों ही प्रतापशाली सूर्य और चन्द्रके समान प्रकाशवान थे । दोनों कुमारोंने बड़े होनेपर न्याय और साहित्यका अच्छा अध्ययन किया था । सिद्धांत और दर्शनशास्त्रके वे मर्मज्ञ थे, वे अब यौवनसम्पन्न थे; शरीर संगठनके साथ सौन्दर्य और कलाका पूर्ण विकास उनमें हुआ था ।

उस समयका शिक्षण आज जैसा दोषपूर्ण नहीं था । आजका शिक्षण मानसिक विकास और चारित्र निर्माणके लिए न होकर केवल उदर पूर्ति और विलासका साधन बना हुआ है । आत्मिक विज्ञान और उसके विकासकी ओर इसका थोड़ा भी लक्ष्य नहीं है। उसका पूर्ण ध्येय भौतिक विज्ञान और उसके विकासकी ओर ही है। युवकोंके मनमें गुप्त रूपसे विकसित होनेवाली वासना और कामलिप्साको वह पूर्ण सहायता देता है । स्वदेश, जातिसम्मान, स्वाधीनता और आत्मगौरवकी भावनाओंको आजका शिक्षण छूता भी नहीं है, उसने युवकोंके सामने एक ऐसा वातावरण पैदा कर दिया है जो उनके लिए भयंकर विनाशकारी है । विदेशी सभ्यता और भावनाओंको यह उत्तेजित करता है और पूर्व गौरवके संस्कारोंकी जड़को नष्ट करता है। इस भयानक शिक्षणके मोहमें भारतीय युवकोंका जीवन और देशकी संपत्ति स्वाहा हो रही है, और उसके बदले उन्हें गुलामी, मानसिक पाप और भोगविलासका उपहार मिल रहा है । इस शिक्षणके साथ ही युवकोंके मानसिक पतन

आगे बढ़े । उन्होंने महात्मा संजयंतको पत्थरोंसे मारना प्रारंभ किया। पत्थरोंकी वर्षा उस समय तक नहीं रुकी जब तक उन्होंने महात्माको जीवित समझा, अंतमें मृतक समझ कर वे उन्हें वहीं छोडकर अपने नगरको भाग गए।

महात्मा संजयंतने इस उपसर्गको बड़ी शांतिसे सहन किया। कर्मफल समाप्त होचुका था, स्वर्णको अंतिम आंच लग चुकी थी, अब उनका आत्म शुद्ध होचुका था, उन्हें विश्वदर्शक केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

उनके संपूर्ण कर्म एक-साथ नष्ट होचुके थे, शरीरसे आयुका संबंध नष्ट होचुका था इसलिये उन्होंने उसी समय निर्वाण प्राप्त किया।

मानव और देवताओंने मिलकर उनका निर्वाण उत्सव मनाया और उनके अद्भुत धैर्यका गुणगान किया।

[१]

महात्मा रामचन्द्र।

(भारत-विख्यात महापुरुष)

(१)

मंडपका मुख्य द्वार बड़ी सुन्दरतासे सजाया गया था, अनेक देशोंसे निमंत्रित नरेश यथास्थान बैठे थे। निश्चित समय पर एक सुन्दरी बालाने सभामध्यमें प्रवेश किया, सभी राजाओंकी दृष्टि उसके मुखमंडल पर थी। सुन्दरी वास्तवमें सुन्दरी थी, उसके प्रत्येक अङ्गसे मादकता छलक रही थी, हाथमें सुगंधित पुष्पोंकी माला थी, साफ वस्त्रोंसे अपने अंगोंको ढके हुए एक रमणी उसका मार्ग प्रदर्शन कर रही थी।

अनेक नरेशोंके भाग्यका फैसला करती हुई वह एक स्थान पर रुकी। दर्शकोंके नेत्र भी उसी स्थान पर रुक गए। व्यक्तिका हृदय

हर्षसे फूल उठा कपोलों पर लाली दौड़ गई. विशाल वक्षस्थल तन गया। बालाने उसके प्रभावशाली मुखमंडल पर एकबार अपनी विशाल दृष्टि आरोपित कर दी, फिर लज्जासे संकुचित हुए अंगोंको समेटकर उसने अपनी बाहुओंको कुछ ऊपर उठाया, और हृदयकी धड़कनको रोकते हुए अपने सुकुमार करकी पुष्पमाला व्यक्तिके गलेमें डाल दी।

कार्य समाप्त होचुका था, अयोध्या नरेश दशरथ विजयी हुए। स्वयंवर मंडपमें कुमारी केकईने उनके गलेमें वरमाला डालदी थी।

वरमाला डालकर अपने संकुचित और लज्जाशील शरीरको लेकर वह झुकी हुई कल्पलताकी तरह कुछ क्षणको वहां खड़ी रही, फिर मंदगतिसे चलकर वह विवाह वेदिकाके समीप बैठ गई।

केकईका चुनाव योग्य था। उसने श्रेष्ठ पुरुषको अपना पति स्वीकार किया था, सुहृद और कुटुम्बी जन इस संबंधसे प्रसन्न थे, लेकिन स्वयंवर मंडपमें पराजित नरेशोंको यह सब असह्य हो उठा। वे अपनेको अपमानित समझने लगे और अपने अपमानका बदला युद्ध द्वारा चुकानेको तैयार हो गए।

राजा दशरथ इसके लिए तैयार थे, उन्होंने अपने रथका संचालन किया, केकईको उसमें बिठलाया और राजाओंसे युद्धके लिए अपने रथको आगे बढ़ा दिया।

नरेशोंने एक साथ मिलकर उनके ऊपर धावा बोल दिया। दशरथ युद्धकिया—कुशल थे, लेकिन उन्हें युद्ध और रथ संचालन दोनों कार्य एक साथ करना पड़ रहे थे, एक क्षणके लिए उन्हें इस कार्यमें कुछ कठिनाई हुई और उनका रथ आगे बढ़नेसे रुक गया। शत्रुओं

आक्रमण जारी था, उनका हृदय इस आक्रमणसे हताश नहीं हुआ था, वे आगे बढ़नेका मार्ग खोज रहे थे। इसी समय उन्होंने देखा, केकईने उनके हाथकी सुदृढ लगामको अपने हाथोंमें ले लिया था, अब युद्ध संचालनके लिए वे स्वतंत्र थे। वीर रमणीकी सहायतासे उनका साहस दूना बढ़ गया, उन्होंने प्रबल पराक्रमके साथ शत्रुओंपर आक्रमण किया। शत्रु सेना पीछे हटने लगी। राजा दशरथ विजयी बने, विजयने उनके मस्तकको ऊंचा उठा दिया।

विजयके साथ वीर बाला केकईको उन्होंने प्राप्त किया, उनका उन्मुक्त हृदय केकईकी वीरता पर मुग्ध था, आजकी विजयका संपूर्ण श्रेय वे केकईको देना चाहते थे, बोले—वीरनारी! तेरी रथ-चातुर्यताने मेरे हृदयको जीत लिया है। अपने जीवनमें आज प्रथम बार ही मैं इतना प्रसन्न हूं, इस प्रसन्नताका कुछ भाग मैं तुझे भी देना चाहता हूं, आर्ये! आजकी इस विजय स्मृतिको चिर स्मरणीय बनानेके लिए मैं इच्छित वरदान देना चाहता हूं तेरे लिये जो भी इच्छित हो उसे मांग, मैं तेरी प्रत्येक मांगको पूर्ण करूंगा।

'मैं आपकी हूं, मेरा कर्तव्य आपके प्रत्येक कार्यमें सहयोग देना है, मैंने आज अपना कर्तव्य ही पूरा किया है। यह प्रसन्नताकी बात है, मैं अपने कर्तव्यमें सफल हुई।"

"आप मुझ पर प्रसन्न हैं, मुझे इच्छित वरदान देना चाहते हैं, नारीके लिये इससे अधिक सौभाग्यकी बात और क्या हो सकती है। मैं इस सौभाग्यको स्वीकार करती हूं, आप मेरे वरदानको अपने पास सुरक्षित रखिए इच्छा होने पर मैं उन्हें मांग लूंगी", केकईने हर्षित

हृदयसे यह कहा। विनीतामें आज आनंदका सिंधु उमड़ पड़ा। प्रत्येक नागरिकका चेहरा हर्षसे झलक उठा था।

\+ + +

राजा दशरथका राजमहल हर्षगानसे गूंज उठा, उनके यहां आज राम जन्म हुआ है।

राम जन्मका उत्सव अवर्णनीय था, कौशल्याका हृदय इस उत्सवसे आनंद मग्न हो गया। यह उत्सव उस समय अपनी सीमाको उलंघन कर गया, जब जनताने रानी सुमित्राके भी पुत्र होनेका समाचार सुना।

दोनों बालक राम लक्ष्मण अपनी बालक्रीड़ासे दशरथके प्रांगण-को सुशोभित करने लगे।

कुछ समय जानेके बाद रानी केकईने पुत्र जन्म दिया, पुत्रका नाम भरत रक्खा गया। इस तरह रानी सुमित्राके द्वितीय पुत्र हुआ, जिसका नाम शत्रुघ्न पड़ा।

कला, बल, पुरुषार्थ विद्यावृद्धिके साथ २ चारों कुमार वृद्धि पाने लगे।

गुरु वशिष्ठने चारों कुमारको शस्त्र और शास्त्र विद्यामें अत्यंत कुशल बनाया। उनके यशकी सुरभि देशके चारों कोने भरने लगी।

मिथुला नरेश जनक इस समय सुख-मग्न दिख रहे थे, रानी विदेहाने एक पुत्र और पुत्रीको साथ ही जन्म दिया था। राजमहलमें आनंदके नगाड़े बजने लगे, लेकिन संध्या समयका यह आनंद सवेरे तक स्थिर नहीं रह सकता। जो राजमहल संध्याके क्षीण प्रकाशमें दीपकोंसे जगमग उठा था, नृत्य और गानसे उन्मादित बन गया था

श्री रामको राज्य तिलक देनेकी तैयारियां होने लगीं, जनता इस महोत्सवमें बड़ी दिलचस्पीसे भाग ले रही थी, आज राजतिलक होनेवाला था इसी समय एक अंतराय उपस्थित हुआ।

रानी केकईका पुत्र भरत बालकपनसे ही विरक्त था, अपने पिताको वैराग्यके क्षेत्रमें अग्रसर हुआ देख उसके विरक्त विचारोंको एक और अवसर मिला। वह भी राजा दशरथके साथ ही वैरागी बननेके लिए तैयार होगया। केकईने यह बात सुनी. उसका हृदय पतिके साथ ही साथ पुत्र वियोगसे कराह उठा। वह कर्तव्य-विमूढ़ होकर कुछ समयको घोर चिंतामग्न होगई। उसकी सखी मन्थरा थी, मथरा बहुत ही चालाक और कुटिल हृदय थी, रानीकी चिंताका कारण उसे मालूम होगया था। उसने रानी केकईको एक सलाह दी। वह बोली—रानी! यह समय चिंताका नहीं प्रयत्नका है। यदि इस समयको तूने चिंतामें खो दिया तो जीवनभर तुझे अपने जीवनके लिए रोना होगा। तुझे राजाने वरदान दिए थे, उन वरदानोंके द्वारा तू अपने प्रिय पुत्र भरतके लिए राज्य मांग ले, लेकिन ध्यान रखना प्रतापी रामके रहते हुए भरत राज्य नहीं कर सकेगा, इसलिए राज्यकी सुरक्षाके लिए रामके वनवासका भी दूसरा वर मांग लेना।

केकई सरलहृदया नारी थी। उसका इतना साहस नहीं होता था लेकिन मन्थराने साहस देकर उसे इस कार्यके लिए तैयार कर लिया।

दशरथ वरदान देनेके लिए प्रतिज्ञाबद्ध थे। केकईने वरदान मांगा और उसे मिला। श्री रामके मस्तकको सुशोभित करनेवाला

राज्यमुकुट भरतके शिरपर चढ़ाया गया—भरतने माताका संकोच, पिताकी आज्ञा और भाइयोंके आग्रहको माना ।

पितृभक्त रामने अपने राज्याधिकारकी चर्चा तक नहीं की । [illegible] पिताकी आज्ञा स्वीकार की । वनवासकी आज्ञासे [illegible] भी विचलित नहीं हुआ । उन्होंने कष्टोंको हंसते [illegible] । पतिपरायणा सीता और भ्रातृभक्त लक्ष्मणने [illegible] हुए । वनवासकी अकथनीय वेदनाएं, [illegible] कष्ट और [illegible] सत्य प्रणसे नहीं डिगा [illegible], वे वन-

[illegible] जनताको उनके जानेका असह्य कष्ट था लेकिन [illegible] । माता और जनताके स्नेह बंधनको तोड़ [illegible] चल दिए । माताओंने [illegible] बहाई । [illegible] धैर्य बंधाते हुए अपने पथपर बढ़ चले ।

(८)

[illegible] रामचन्द्र [illegible] अरण्यमें विचरण करने लगे, उनके [illegible] वनों और भयानक कन्दराओंको [illegible] अपना [illegible] लिया । भयानक जंगलों और गुफाओंमें [illegible] हुए उनका हृदय जरा भी व्याकुल नहीं होता । वे इस [illegible] थे ।

वृक्षोंके मधुर फल खाकर अपनी क्षुधा शान्त करते हुए वे कौशिका सरिताको पारकर दंडकारण्यके निकट पहुंचे । गिरिकी सुन्दरताने उनके हृदयको आकर्षित कर लिया । वे कुछ समयको विश्राम लेनेके लिए वहीं एक कुटी बनाकर ठहर गए ।

लक्ष्मण प्रकृतिके उपासक थे। प्रकृतिका अबाधित साम्राज्य गिरिके चारों ओर फैला हुआ था। उसकी मनोमोहकताने उनका हृदय मुग्ध कर लिया था।

एक दिन प्रकृतिकी शोभा निरीक्षण करते हुए वे बहुत दूर पहुंच गए थे, वहां उन्होंने एक बांसके जंगलको देखा। बांसका वह सघन जंगल एक अद्भुत प्रकाशसे प्रकाशित हो रहा था। देखकर उनके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। वे उस प्रकाशकी खोज करते हुए बांसोंके निकट पहुंचे। उसके अन्दर उन्होंने एक चमकती हुई वस्तु देखी। आगे चलकर उन्होंने उसे उठा लिया। वह चमकता हुआ तीक्ष्ण खड्ग था, खड्गकी तीक्ष्ण धारके परीक्षणके लिए उन्होंने उसे बांसों पर चलाया। अब क्या था उनके हाथ लगते ही सम्पूर्ण बांसका जंगल कट गया। उसमें बैठा हुआ शंबुककुमारका शिर भी कट कर जमीन पर गिर गया।

आश्चर्यचकित लक्ष्मण उस खड्गको लेकर अपने स्थानको चले आए।

खरदूषणकी बहिन चन्द्रनखाका पुत्र बांसके जंगलमें बैठा हुआ देविक खड्गकी उपासना कर रहा था, उपासना करते हुए उसे एक माह हो चुका था, उसकी मां उस नित्यप्रति भोजन लाया करती थी।

शंबुककी आराधना आज समाप्त हो चुकी थी। खड्ग उसके सामने पड़ा था लेकिन उसका दुर्भाग्य उसके साथ था। वह शंबुकको न मिलकर लक्ष्मणके हाथ लगा। उसे उसके द्वारा मृत्यु ही हाथ लगी।

आज चन्द्रनखा अपने पुत्रके लिए नियमानुसार भोजन लाई

(१०)

रामके जन्मोत्सवके बादसे अयोध्या अपने सौभाग्यसे वंचित थी, आज रामके लौटने पर उसने अपना सौभाग्य फिर पाया, वह सौन्दर्य-मय हो उठी।

विरागी भरतने श्रीरामके चरणोंपर अपना मुकुट रख दिया, वे एक क्षणके लिए भी अब अयोध्यामें नहीं रहना चाहते थे। प्रजाकी रक्षाके लिए श्रीरामको राज्यभार स्वीकार करना पड़ा।

रामराज्यसे अयोध्याका गया हुआ गौरव पुनः लौट आया, प्रजाने संतोषकी सांस की; राम प्रजाके अत्यंत प्रिय बन गए। उन्होंने राज्यकी सुन्दर व्यवस्था की। प्रत्येक नागरिकको उनके योग्य अधिकार दिये, उनके राज्यमें सबल और बलवान, धनी निर्बल और नीच ऊंचका कोई भेदभाव नहीं था, सबको समान अधिकार प्राप्त था।

सुखसागरमें अशांतिका एक तू　 उठा। तूफानकी लहरें धीरे२ उठीं। "श्री रामने सीताके सतीत्वकी परीक्षा लिए बिना ही उसे अपने घरमें स्थान दे दिया, वह रावणके यहां कितने समय तक रहीं, वहां रहकर क्या वह अपने आपको सुरक्षित रख सकी होंगी?"

लहरें श्री रामके कानोंतक जाकर टकराईं भयंकर तूफान उमड़ उठा, इस तूफानमें पड़कर श्री राम अपनेको संभाल नहीं सके, सीताका त्यागकर उन्होंने इस तूफानको शांत करनेका प्रयत्न किया।

सीताजी भयंकर जंगलमें निर्वासित थीं। वहां उन्होंने प्रतापी लव-कुशको जन्म दिया।

नारद द्वारा सीताजी परीक्षा देनेके लिए एकबार फिर अयोध्या लाई। गईं उन्होंने अग्निप्रवेश किया और अपने सतीत्वकी परीक्षामें

सफल हुयीं लेकिन गृहस्थ जीवन उन्हें अब पसंद नहीं था, वे श्री रामसे आज्ञा लेकर तपस्विनी होगई ।

(११)

सीताके चले जानेपर श्री रामका जीवन शुष्क बन गया था उनका अब सारा मोह लक्ष्मणमें आ समाया था ।

एक दिनकी बात; इन्द्रसभामें राम-लक्ष्मणके अद्भुत स्नेहकी कहानी सुनकर कीर्तिदेव उनके परीक्षणके लिए आया । आकर उसने श्री रामके निधनका झूठ झूठ समाचार श्री लक्ष्मणको सुनाया, लक्ष्मणका हृदय श्री रामका निधन सुनकर टूट गया, वे मूर्छित होकर भूतलपर गिर पड़े । उनकी वह मूर्च्छा मृत्युके रूपमें परिणत होगई । कीर्तिदेवको स्वप्नमें भी इस दुर्घटनाकी आशंका नहीं थी, लक्ष्मणको मृतक देख उसके हृदयमें भूकंप होगया, उसे अपने कृत्यपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ ।

लक्ष्मण पर श्रीरामको हार्दिक स्नेह था, उन्हें पृथ्वी पर पड़े देखकर उनके स्नेहका बांध टूट पड़ा, लक्ष्मणजीका शरीर मृतक बन चुका था लेकिन श्रीराम उसे अबतक जीवित ही समझ रहे थे । वे लक्ष्मणको मूर्छित समझकर अनेक प्रयत्नोंसे उनकी मूर्छा हटानेका उद्योग करने लगे ।

जनता राम लक्ष्मणके स्नेहको समझती थी, वह यह भी जानती थी कि श्री लक्ष्मणका देहावसान हो चुका है लेकिन मोहमग्न रामको कोई समझा नहीं सका । उनके इस मोहमें सबकी सहानुभूति थी, लेकिन सहानुभूतिने अब दयाका रूप धारण कर लियां था । धीरे २ श्रीरामका यह मोह जनताके कौतूहलकी वस्तु बन गया ।

वे लक्ष्मणके मृत शरीरको कंधे पर रखकर घूमते थे। कभी उसे भोजन खिलाते, कभी शृंगार कराते और कभी उसे उठानेका निष्फल और हास्यजनक प्रयत्न करते थे। राज्यकार्य उन्होंने त्याग दिया था। इस तरह छह मास तक उनका यह मोहका संसार चलता रहा, अंतमें उनका मोह-बंधन टूटा, उन्होंने अपने भाईका मृतक संस्कार किया।

संसार-नाटकके अनेक दृश्योंको देखते २ श्रीरामका हृदय अब ऊब गया था। राज्य कार्य और वैभवके वातावरणसे अब वह अपनेको दूर रखना चाहते थे। उनकी निर्मल आत्मापरसे मोहका आवरण हट चुका था। उनकी आत्मोद्धारकी इच्छा प्रबल हो उठी और एक दिन वे अपने पुत्रको राज्यभार सौंप कर सन्यासी बन गए।

निर्मल आकाशमें सूर्य-देव जिस तरह चमकते हैं उसी तरह श्रीरामका शरीर तपके दिव्य तेजसे प्रकाशमान हो उठा। देवताओंको उनकी इस निर्ममत्वता पर आश्चर्य होने लगा, उनकी परीक्षाका तीर छूट चुका था। योगी रामके चारों ओर विलासका वातावरण फैल गया, कोकिलका पंचम नाद, मधुकरोंका गुंजन, पुष्पोंकी मत्त सुगंधि और बालाओंके मृदु हाससे सारा वन गूंज उठा।

परन्तु रामका मोह तो नष्ट हो चुका था, संसारका कोई भी आकर्षण विचलित नहीं कर सकता था परीक्षक देवता पराजित होकर विजित हुए, श्रीरामके आत्म-तेजकी विजय हुई।

योगी रामके निर्ममत्वकी देवताओंने प्रशंसा की। महात्मा राम अब महात्मा राम ही थे।

[१०]

तपस्वी वालिदेव।

(दृढ़-प्रतिज्ञ, वीर और योगी।)

(१)

प्रबल प्रतापी सम्राट् दशाननने अपने प्रधान मन्त्रीकी ओर निरीक्षण करते हुए कहा—मन्त्री! नहीं। ऐसा कदापि नहीं हो सकता। क्या मेरे अखण्ड प्रतापसे वह अवगत नहीं? भरत-खण्डके नरेश्वरोंको किञ्चित् भृकुटिमात्रके बलसे विकम्पित कर देनेवाले दशाननकी शक्तिसे क्या वह अपरिचित है? नहीं, यह असत्य संलाप है।

मंत्रीने कहा—महाराज! यह अक्षरशः सत्य है, आपका मंत्री-मंडल कदापि असत्य संभाषण नहीं करता, उसे अपने कथनपर पूर्ण विश्वास रहता है। सत्यके अन्तस्तलमें प्रवेश करके ही आपके सम्मुख वाक्य उच्चारण किया जाता है। यह अटल सत्य है कि "बालिदेवने

सुमेरु पर्वत जैसी यह निश्चल प्रतिज्ञा ली है, वह जैनेन्द्रदेव, दिगम्बर ऋषिके अतिरिक्त किसी विश्वके सम्राट्को नमस्कार नहीं करेंगे।"

दशाननने कहा—मन्त्री! तब क्या बालिदेवने मुझे नमस्कार करनेकी अनिच्छासे ही ऐसा किया है? नहीं! बालिदेवका राज्य मेरे आश्रित है। यह कैसे सम्भव हो सकता है कि वह मुझे प्रणाम न करे और मेरी आज्ञा शिरोधार्य न करे? मंत्री! प्रयत्न करने पर भी तुम्हारी इस बात पर मुझे विश्वास नहीं होता।

मंत्रीने कहा—महाराज! 'कर कंकणको आरसीकी क्या आवश्यक्ता?' एक दूत भेजकर आप इसका स्वयं निर्णय कर सकते हैं। लंकेशकी मुद्रासे अंकित एक आज्ञापत्र उसी समय बालीदेवके पास राज्य दूत द्वारा भेजा गया।

(२)

बालिदेव किष्किन्धा नगरके अधिपति थे। प्रख्यात कपिवंशमें उनका जन्म हुआ था, वह बड़े पराक्रमी वीर और दृढप्रतिज्ञ थे। उन्हें यह राज्य दशाननकी कृपासे प्राप्त हुआ था। राज्यसिंहासन पर आसीन होते ही उन्होंने अपने दृढ़ प्रतिक्रमके प्रभावसे अल्प समयमें ही अनेक विद्याधरोंको अपने आश्रित कर लिया था। तटस्थ समस्त राजाओंमें वह महामण्डलेश्वरके नामसे प्रसिद्ध थे। निकटस्थ राजाओंपर उनका अद्भुत प्रभुत्व था। उनकी उन सबपर अनिवार्य आज्ञा चलती थी।

बालीदेव धर्मनिष्ठ कर्मठ और विद्वान् थे। जैनधर्म पर उन्हें निश्चल श्रद्धा थी। नित्यकर्म पालनमें वह सतर्कतापूर्वक निरन्तर तत्पर रहते थे।

अपने साहस, यहांतक कि मनुष्यताका भी बोध नहीं रहता, क्रमशः वह साधारण श्रेणीसे निकल कर अपनेको एक विशाल उच्च स्थानपर आसीन हुआ समझने लगता है, और अन्तमें वह अपने मिथ्या महत्त्वके सम्मुख किसी व्यक्तिको कुछ समझता ही नहीं है । यदि उसे अपनी अनुचित शक्तिके विकासके साधन प्राप्त हो जाते हैं तब तो उसके अभिमानका ठिकाना ही नहीं रहता किञ्चित्मात्र वैभव अपूर्ण ज्ञान, शारीरिक बल और प्रभाव प्राप्त कर ही वह अपने पैरोंको पृथ्वीपर रखनेका प्रयत्न नहीं करता ।

लंकेश उस समय सार्वभौमिक सम्राट् था, वह असंख्य राज्य-वैभवका स्वामी था । उसका राजाओंपर एकछत्र अधिकार था, वह अनेक उत्तमोत्तम विद्याओंका स्वामी था, अपनी विद्याओंका उसे पूर्णतः अभिमान था, अभिमानके लिए और आवश्यक ही क्या है ? सत्ता, वैभव और निपुणता अभिमान-अनलके लिए घृतकी आहुतिएं हैं । अपने विमानको आकाशमें अटका हुआ निरीक्षण कर उसने अपनी समस्त विद्याओंका उपयोग करना आरम्भ किया, अपनी समस्त शक्तिको उसने विमान चलानेमें लगा दिया, किन्तु उसका विमान वहांसे टससे मस नहीं हुआ । मंत्र-कीलित पुरुषकी तरह वह उस स्थानपर स्तंभित हो गया । अभिमानी लंकेशका हृदय जल उठा । वह विमानसे उतरा । उसने नीचे निरीक्षण किया । वहां उसने जो कुछ देखा उससे उसका हृदय क्रोध और अभिमानसे धधक उठा । उसने देखा कि नीचे वालिदेव तपश्चरणमें मग्न हुए बैठे हैं ।

× × ×

लंकेश ज्ञानवान व्यक्ति था, उसे शास्त्रोंका अच्छा ज्ञान था। वह जानता था कि महत्वशाली ऋद्धि प्राप्त मुनिराजोंके ऊपरसे विमान नहीं जा सकता है। वह मुनियोंकी शक्तिसे अवगत था, किन्तु हायरे अभिमान! तू मानवोंकी निर्मल ज्ञानदृष्टिको प्रथम ही धुंधला कर देता है। तेरी उपस्थितिमें मनुष्यके हृदयका विवेक विलग होजाता है, और अभिमानी प्रेतको हेयादेयका किञ्चित भी बोध नहीं रहता। अभिमान-कुमित्रकी ममतामें पड़े हुए लङ्केशके हृदयसे विवेक विलय होगया। वह विचारने लगा—

"ओह! यह वही वालिदेव है, जिसने मेरा उस समय मान भंग किया था और आज भी मुझे पराजित करनेके लिए ही इसने मेरा विमान रोक रक्खा है। अच्छा देखूँ मैं इसकी शक्ति? मैं इस पहाड़को ही उखाड़ कर समुद्रमें न फैंक दूँ तो मेरा नाम दशानन नहीं। उस समय इसने समस्त राजाओंके सम्मुख मेरा जो अपमान किया था, उसका बदला आज मैं इससे अवश्य लूँगा। आज मैं इसे अपनी अचिन्त्य विद्याओंकी शक्ति दिखला दूँगा।" क्रोध और अभिमानके असीम वेगको धारण करनेवाले दशाननने अपनी विद्या और पराक्रमके बलपर पर्वतके नीचे प्रवेश किया। उसने अपनी समस्त विद्याशक्ति और पराक्रमकी बाजी लगाकर उस पर्वतके उखाड़नेका उद्योग किया।

ऋषीश्वर वालिदेव ध्यानस्थ थे, तपश्चरणमें मग्न थे। उनके हृदयमें कुछ भी द्वेष, अभिमान, अथवा कलुषित भाव न था। उन्होंने देखा कि दशानन एक बड़ा भारी अनर्थ करनेको कटिबद्ध हुआ है। उसके इस प्रकारके उखाड़नेसे इस पर स्थित अनेक दर्शनीय जिनमन्दिर

नष्टभ्रष्ट हो जायंगे, तथा असंख्य प्राणियोंका प्राणघात होगा, अनेक प्राणियोंको असह्य कष्ट होगा और वह भी केवल मात्र मेरे कारण। मुझे अपने कष्टोंकी कुछ भी चिन्ता नहीं है। कष्ट मेरा कुछ भी नहीं कर सकते; किन्तु इन क्षुद्र प्राणियोंके प्राण निष्प्रयोजन ही पीड़ित हों यह मुझसे कदापि नहीं देखा जा सक्ता। इस प्रकार करुणा भाव धारणकर उन योगिराजने अपने बाएं पैरके अंगूठेको किंचित नीचे दबाया।

आत्म शक्ति—त्यागकी शक्ति, तपश्चरणकी शक्ति अचिंतनीय है, अनन्त है, अकथ है। जो कार्य संपूर्ण पृथ्वीका अधिपति सम्राट् इन्द्र तथा नरेश्वरोंपर अपनी अखण्ड आज्ञा परिचलित करनेवाला चक्रवर्ति अद्भुत शारीरिक बलसे सांसारिक वीरोंको कम्पित कर देनेवाला अखंड बाहु, अनन्त कालमें अगाध उद्योगके द्वारा कर सकनेको समर्थ नहीं हो सकता, वही कार्य और उससे अनंत गुणा अधिक कार्य तपस्वी, महात्मा, योगी दिगम्बर मुनि अपनी बढ़ी हुई आत्मशक्तिके प्रभावसे क्षण मात्रमें कर सकता है। असंख्य संपत्ति शालियोंकी शक्ति, असंख्य राजाओंसे सेवित सम्राट्की शक्ति असंख्य वीरोंसे सेवित वीरकी शक्ति उस योगीकी अलौकिक शक्तिके सामने समुद्रमें बूंदके समान है।

योगिराजके अंगूठे मात्रके दबानेसे ही अखंड परिश्रम द्वारा किंचित ऊपरको उठाया हुआ पर्वत पातालकोकमें प्रवेश करने लगा। दशाननका समस्त शरीर संकुचित हो गया, पसेवकी धारा बहने लगी, अपनेको पृथ्वीतलपर दबता हुआ देखकर उसका मुख चिंतासे म्लान

हो गया । उसका सारा अभिमान, उसकी सारी शक्ति, उसका समस्त विद्या, बल एक क्षणको कपूरके सदृश हो गया । अभिमानी मानव ! इसी नश्वर वैभवके अभिमानके बल पर, इसी क्षणिक शक्तिके नशेमें, इसी किंचित् विद्या बलके ऊपर संसारका तिरस्कार करनेको तुल जाता है । धिक्कार ! तुम्हारी बुद्धिपर, शतबार धिक्कार है उसके अभिमान पर । आज वह अभिमान गला फाड़कर रो रहा था । आज उस अभिमानका सर्व नाश हो रहा था ? क्या आज दशाननके उस अभिमान कुमित्रका कहीं पता था ?

समस्त मानव मंडल बढ़ता है और गिरता भी है, अभिमानी और निरभिमानी एक दिन समय पाकर सभी गिरते हैं, किन्तु निरभिमानी व्यक्तिका वास्तवमें पतन नहीं होता । उसे खेद नहीं होता ! अभिमानी खूब चढ़ता है अपनेको धड़ाधड़ आगे बढ़ाता है, किन्तु समय पाकर वह चारों खाने चित्त गिरता है । उसका मन मर जाता है, उसके खेदका कुछ ठिकाना नहीं रहता, और वह असमर्थ होजाता है ।

दशानन पर्वतके असह्य भारको अपने सिरपर नहीं रख सका वह जोरसे चिल्लाने लगा । बड़ा भारी कोलाहल उपस्थित होगया । रोते२ उसका गला भर आया, वालिदेव दशाननके आर्तनादको श्रवण नहीं कर सके, उनका हृदय दयासे आर्द्र होगया । उन्होंने उसी क्षण अपने पैरके अंगूठेको ढीला किया, दशानन पर्वतके नीचेसे अपना जीवन सुरक्षित लेकर निकल आया । उसी समय ऋषीराजके तीव्र तपश्चरणसे उत्पन्न हुए दृढ़ तेजके प्रभावसे देवताओंके आसन भी कंपायमान हो गए ।

उनकी अंगुली पर झूलते हुए देखा—दर्शकोंके आश्चर्यकी अब सीमा नहीं रही, उन्होंने अपने दांतोंके नीचे अंगुली दबाकर इस मुग्धकारी प्रदर्शनको देखा—वे एक क्षणको आत्मविस्मृत होकर सोचने लगे—ओह ! इतनी शक्ति ! इतना पराक्रम ! क्या हम लोग जागृतिमें हैं अथवा स्वप्नमें ? इस सुकुमार शरीरमें इतनी शक्तिकी कभी कल्पना की जा सकती थी । वास्तवमें इस सारे संसारमें नेमिनाथ अपनी शक्तिमें अद्वितीय हैं ।

शक्ति प्रदर्शन समाप्त हुआ । श्रीकृष्णजीको हृदय पर इस शक्ति प्रदर्शनसे गहरी चोट लगी । बहुत प्रयत्न करके रोकने पर भी अपने चेहरे परके निराशाके भावोंको वे नहीं रोक सके । उनका चमकता हुआ चेहरा एक क्षणको मलिन पड़ गया । एक गहरी निराशाकी सांस लेकर उन्होंने अपने मनमें कहा—'अब सचमुच ही मेरे राज्यकी कुशल नहीं है' उनके निकट ही खड़े हुए बलभद्रजीने उनकी भावनाको समझा । वे बोले—भाई कृष्ण ! आप अपने हृदयकी चिंता त्याग दीजिए, आप जो सोच रहे हैं वह कभी नहीं होगा । कुमार नेमिनाथ तो बालकपनसे ही वैरागी हैं, भला एक वैरागीको राज्यपाटसे क्या मतलब है ?

बलभद्रजीके संबोधनसे श्रीकृष्णजीके हृदयका भय कुछ कम हुआ । उन्होंने संतोषकी सांस ली और नेमिनाथजीके प्रति अपना पूर्ववत् प्रेमभाव प्रदर्शित किया ।

सभा विसर्जित हुई । श्रीकृष्णजी अपने राज्यमहलकी ओर चले लेकिन राज्य सभाका वह दृश्य उनके नेत्रोंके सामने घूम रहा

था। वे किसी तरह नेमिकुमारको शक्तिहीन बनानेका संकल्प करते हुए राज्यमहलमें पहुंचे।

प्रत्येक माताके हृदयमें अपने पुत्रसे कुछ आशाएं रहती हैं। अपने स्नेहका प्रतिफल चाहनेकी अभिलाषा उनके हृदयको निरंतर ही तरंगित किया करती है। उसकी सबसे बड़ी अभिलाषा होती है पुत्रके विवाह—सुख देखनेकी। पुत्र—वधूके प्रसन्न वदनको देखकर वह अपने हृदयकी संपूर्ण इच्छाएं सफल कर लेना चाहती है इतनेहीसे उसके हृदयकी साध पूर्ण हो जाती है।

नेमिकुमार अब यौवन-संपन्न थे। उनका सारा शरीर यौवनके वेगसे भर गया था। उद्दाम यौवनका साम्राज्य पाकर भी काम विकार उनके बालकके समान सरल हृदयमें प्रवेश नहीं कर सका था। उनका हृदय गंगाजलकी तरह निष्कलंक और वासना रहित था। माता शिवादेवी पुत्रके हृदयको जानती थी, लेकिन पुत्र—वधू पानेकी कोमल अभिलाषाका वे त्याग नहीं कर सकती थीं। पुत्र परिणयसे होनेवाले आनंदका लोभ उनके हृदयमें था। लेकिन वे अनेक प्रयत्न करनेपर भी उनके हृदयमें विवाहकी अभिलाषा जागृत नहीं कर सकी थी। लेकिन उनके हृदयकी उत्कट इच्छा अभी मरी नहीं थी, वे प्रयत्नमें थीं। उन्होंने अपने इस प्रयत्नमें श्रीकृष्णजीको भी सम्मिलित करना चाहा।

उस दिन मध्याह्नका समय था जब माता शिवादेवीने विवाह मंत्रणाके लिए श्री कृष्णजीको अपने राज्यमहलमें बुलाया। उन्हें योग्य आसन पर बिठलाकर स्नेहभरी दृष्टिसे उनकी ओर देखा, फिर उनके

बुलानेका कारण बतलाती हुई वे प्रेमभरे स्वरमें श्रीकृष्णजीसे बोली—पुत्र ! तुमसे यह बात अपरिचित नहीं होगी कि कुमार नेमिनाथ अपने विवाह सम्बन्धके लिए किसी तरह भी तैयार नहीं होते, और विवाहके विना फिर आगे कुलकी मर्यादा कैसे स्थिर रहेगी ? तुम सम्पूर्ण कलाकुशल हो, तुम्हें मेरे मनकी चिन्ता दूर करना होगी, और किसी प्रकार भी कुमारको विवाहके लिए तैयार करना होगा ।

माता शिवादेवीकी बात सुनकर श्रीकृष्णजी प्रसन्न हुए, वे भी यही चाहते थे । उन्होंने शिवादेवीसे कहा—माताजी । आपने मुझसे अबतक नहीं कहा, नहीं तो यह कार्य कबका सम्पन्न होजाता । लेकिन अब भी कोई हानि नहीं है, आप अब निश्चिंत रहिए । कुमार नेमिनाथका विवाह अब होकर ही रहेगा ! यह कहकर वे राजमहल लौट आए ।

मार्गमें चलते२ उन्होंने सोचा, यह ठीक रहा । नेमिकुमारको शक्तिहीन बनानेमें अब कुछ समयका ही विलम्ब है । उनकी शक्ति उसी समयतक सुरक्षित है जबतक वे महिलाओंके मोहसे दूर हैं । मनुष्योंकी महान शक्ति और पराक्रमका ध्वंश करनेवाली संसारमें यदि कोई शक्ति है तो वह एक मात्र स्त्री शक्ति है । जब तक इनके रूपजालमें कोई व्यक्ति नहीं फंसता तब तक ही वह अपने विवेकको सुरक्षित रख सकता है, लेकिन जहां वह इन विलासिनी तरुणी बालाओंके मधुमय हास्य और मधुर चितवनके सामने आता है वहां अपना सब कुछ उनके चरणों पर समर्पित कर देता है । संसारमें यदि मानवी शक्ति किसीके सामने पददलित और पराजित होती है तो वह नारीकी रूपशक्ति ही है ।

जो शूरवीर मत्त हाथियोंके गर्वित मस्तकको विदीर्ण करनेमें समर्थ होते हैं, जो वीर योद्धा विकराल गर्जना करनेवाले भयंकर केशरी-सिंहसे युद्ध करलेते हैं, जो विक्रमशाली भयानक युद्ध भूमिमें प्रबल शत्रुके मस्तकको झुका देते हैं. वही वीर योद्धा, वही विक्रमशाली सैनिक वनिता-कटाक्षके साम्हने अपनेको स्थिर नहीं रख सकते। महान ज्ञानी और तपस्वी उसके मदोन्मत्त यौवनके साम्हने अपना सारा ज्ञान और विवेक खो देते हैं।

कुमार नेमिनाथको अपनी शक्तिका बड़ा अहंकार है तब मुझे उनकी इस शक्तिका दमन करनेके लिए भी यही करना होगा। उनकी शक्तिके मुकाबलेमें महिला शक्तिको रखना होगा, लेकिन इस कार्यके लिए मुझे महिलाओंकी सहायता लेना होगी। अच्छा तब यही होगा। बहुत कुछ सोचनेके बाद वे अपनी रानियोंके पास पहुंचे और उनसे कुमार नेमिनाथके हृदयमें विवाह संबंधी भावनाएं भरनेके लिए कहा।

श्रीकृष्णजीके आदेशानुसार वे सभी सुन्दरी महिलाएं कुमार नेमिनाथको मनोहर बगीचेमें लेगईं बगीचेमें एक सुन्दर सरोवर था वहां पर वे श्रीकृष्णजीकी सभी रानिएं नेमिकुमारके साथ जल क्रीड़ा करने लगीं।

जल क्रीड़ा करते हुए उनके हृदयमें अपनी उद्देश्य पूर्तिका ही ध्यान था। इसलिए उन्होंने जल क्रीड़ाके साथ २ कुछ विनोद करना भी प्रारंभ किया। नेमिकुमार विकार रहित सरल भावसे उनके इस विनोदमें भाग लेने लगे।

उन सभी महिलाओंमेंसे एक अत्यंत विनोदिनी महिला उनकी

विवाहके लिए ये इकट्ठे हुए हैं ? यह कैसे हो सकता है, तुम ठीक ठीक और सच सच हाल सुनाओ।

सारथीने निर्भय होकर कहा—महाराज! आपके विवाहमें शामिल होनेके लिये बहुतसे म्लेच्छ राजालोग आए हुए हैं, और उनमें बहुतसे लोग मांस खाने वाले भी हैं।.....

नेमिकुमार बोले—सारथी, बोलते जाओ, तुम बीचमें क्यों रुक गये ? सारथीने कहा-महाराज! उनके मांस भोजनके लिए ही इन पशुओंको मारा जायगा।

नेमिनाथका हृदय भर आया। वे बोले:—सारथी! यह तुमने क्या कहा ? मेरे विवाहके लिए उन बेचारे गरीब जानवरोंको मारा जायगा ?

सारथीने फिर कहा:—महाराज! हां, इनको मारा जायगा। आप दयालु और करुणामय हैं, इसलिए आपको आया हुआ जानकर यह आपसे बिनती करनेके बहाने चिल्ला रहे हैं।

नेमिनाथने दयापूर्ण स्वरसे कहा:—ऐ सारथी! मेरे विवाहके लिए ये गरीब प्राणी मारे जायेंगे, इस लिए यह मुझसे विनती करने आए हैं, सारथी! क्या यह सब सच हैं ?

सारथी बोला:—हां महाराज! श्री कृष्ण महाराजकी ऐसी ही आज्ञा है, उनके वचनोंको कोई टाल नहीं सकता।

नेमिनाथने फिर कहा:—सारथी! क्या श्री कृष्णजीकी ऐसी ही आज्ञा है कि मेरे विवाहके लिए यह बेकसूर पशु मारे जांय और उसकी इन आज्ञाको कोई टाल नहीं सकता ?

सारथी बोला—हां महाराज! वह चक्रवर्ती राजा है, उनकी आज्ञाके खिलाफ यहांपर कोई आवाज नहीं उठा सकता।

दयासागर श्री १००८ नेमिनाथस्वामी।

[पशु पुकारसे वैराग्य, विवाहरथ वापिस, व गिरनारगमन।]

नेमिनाथने दयालुतापूर्वक कहा—सारथी ! तुमने यह क्या कहा ? उनके विरुद्ध कोई आवाज नहीं उठा सकता ? नहीं, यह गलत है। उठा सक्ता है। पशुओंकी यह पुकार उनके खिलाफ आवाज उठ रही है—आसमान इस आवाजको सुन रहा है मैं उनकी आवाजको सुन रहा हूं। ओहो ! इतनी करुणा मई पुकार ! यह रोना ! नहीं सारथी, अब मैं एक मिनट भी नहीं सुन सकता, मेरा रथ उन पशुओंके पास ले चलो।

सारथीने कहा:—महाराज.....

नेमिनाथने आज्ञाके स्वरसे कहा:—सारथी ! कुछ मत कहो कुछ मत कहो, मेरा मन बेचैन होरहा है, यह रोना यह चिल्लाना यह पुकार ! नहीं सुनी जाती। जल्दी रथ ले चलो मुझे उन पशुओंके पास पहुंचाओ। सारथीने रथ बढ़ा दिया, कुमार नेमिनाथ वहां पहुंचे जहां पर वह पशु बंद थे, उनका विलाप सुनकर उनकी आंखोंसे आंसू बहने लगे बिचारे गरीब पशु बिना अपराधके इस तरह बंद पड़े हैं, उनके बच्चे जंगलमें तड़प रहे होंगे। वह सोचते होंगे मेरी मां आती होगी। वह भूखके मारे सिसक रहे होंगे। उन्हें क्या पता होगा कि वह निर्दय मनुष्योंका भोजन बनाया जायगा, उन्हें क्या पता होगा कि मनुष्य इतना ज्ञानवान, मनुष्य ही विचार और विवेकका दावा रखनेवाला यह मनुष्य ही उनके प्राणोंका ग्राहक है। ओह ! इस गरीब हरणीकी ओर तो देखो—उसके करुणाकी भिक्षासे भरे हुए भोले दीन नेत्र कैसे मेरी ओर देख रहे हैं। अरेरे। इन गरीब जानवरोंने क्या कसूर किया है, उन्होंने किसीका क्या बिगाड़ा है, जो इनकी इस तरह हत्या की

जायगी ? क्या गरीब, बेकसूर जानवरोंकी हत्या करना ही मनुष्यकी बहादुरी है ? धन्य है इनकी बहादुरीको। सिंह और बाघको देखकर यह दूर भाग जायेंगे और गरीब जीवोंकी इस प्रकार हत्या करेंगे क्या गरीब ही इनका अपराधी है ? मैं इन्हें अभी छोड़े देता हूं।

कुमार नेमिनाथने बाड़ेका दरवाजा खोल दिया। सभी जानवर अपनी २ जान लेकर मौतके पिंजड़ेसे निकले और नेमिकुमारको आशीर्वाद देते हुए जंगलमें अपनी २ जगहको चल दिए।

नेमिनाथने कहा—जाओ गरीब प्राणियों जाओ, अपने बच्चोंसे मिलो, आनंदसे घूमो और सुखसे अपने जीवनको व्यतीत करो।

मेरे विवाहके कारण तुम्हें इतनी तकलीफ सहन करना पड़ी, इतना दुःख भोगना पड़ा इसके लिए मुझे माफ करना। गरीब जानवरों! हममें मेरा कुछ भी कसूर नहीं है, मुझे तुम्हारी इस मुसीबतका कुछ भी पता नहीं था, ओह! मनुष्यजाति दूसरोंके प्राणोंकी कुछ भी कीमत नहीं समझती। मनुष्योंको इस स्वार्थके लिए धिक्कार है और उस मतलबी संसारको धिक्कार है जिसमें मनुष्य ऐसे निर्दय काम करता है।

सारथी मेरा रथ घरकी ओर ले चलो।

सारथीने कहा—महाराज! यह क्यों ? बरातके लोग आ रहे हैं महाराजा समुद्रविजय आपके आनेकी बाट देख रहे होंगे। नेमिनाथने विरक्त होकर कहा—नहीं सारथी, मेरा रथ लौटा दो, अब मैं अपना विवाह नहीं करूंगा, मेरे विवाहके लिए इतनी जीव हिंसा होरही हो मैं नहीं देख सकता। मैं संसारको दयाका उपदेश दूंगा, मैं संसारके

यदि वह शुष्क हृदय तुझे नहीं चाहता तो उसे जाने दे, अभी तो अनेक गुणशाली राजकुमार इस भूमंडलपर हैं। कुमारी कन्याके लिए वरकी क्या कमी और फिर तेरे जैसी सुन्दरी और गुणशीलाकी इच्छा कौन व्यक्ति नहीं करेगा? तुझे अब पागल नहीं बनना चाहिए और अपने हृदयमें नए आनंदको भरना चाहिए।

सखियोंके प्रलोभनपूर्ण वाक्य जालसे अपनेको निकालती हुई राजीमती स्थिर होकर बोली—सखियो! तुम आज मुझे यह क्या उपदेश दे रही हो? मालूम पड़ता है तुम इस समय होशमें नहीं हो। यदि तुम्हे होश होता तो तुम ऐसे शब्दोंका प्रयोग मेरे लिए कभी नहीं करतीं। तुम नहीं जानती, यदि सूर्य कभी पश्चिम दिशामें उदित होने लगे और चन्द्र अपनी शीतलता त्याग दे किन्तु आर्यकुमारिएं जिस महापुरुषको हृदयसे एकबार स्वीकार कर लेती हैं उसके अतिरिक्त फिर किसी पुरुषकी स्वप्नमें भी आकांक्षा नहीं करती। मैं नेमिकुमारको हृदयसे अपना पति स्वीकार कर चुकी हूं, क्या हुआ यदि विवाह वेदीके समक्ष उन्होंने मेरे हाथपर अपना हाथ आरोपित नहीं किया। लेकिन उनका अदृश्य हाथ तो मैं अपने मस्तकपर रखकर अपनेको महा भाग्यशीला समझ चुकी हूं। क्या हाथपर अपना हाथ रखना ही विवाह है? मंत्रोंके चार अक्षर ही क्या विवाहको जीवन देते हैं? नहीं, कभी नहीं। हृदय समर्पण ही विवाह है और मैं वह पहिले ही कर चुकी थी। क्या हुआ दुर्भाग्यवश मेरा उनसे संयोग नहीं हो सका। प्रत्यक्षमें व्यवहारिक क्रियाएं नहीं हुई। क्या माता पिता द्वारा कन्यादान करना ही विवाह है? पार्थिव शरीरदान हीको

क्या विवाह कहते हैं ? यह तो विवाहका केवल मात्र स्वांग है। विवाह तो हृदयदान है ।

सखियो ! कुमारी कन्या जब किसीको अपना सर्वस्व समर्पण कर चुकती है तो उसका अपनी आत्मा, मन और शरीर पर कुछ भी अधिकार नहीं रहता । वह तो इन सबका दान कर चुकती है। उसके पास फिर अपना रहता ही क्या है जो वह दूसरेको दे । जो हृदय एकबार समर्पण कर दिया गया है, जो एकबार किसीको अपना भाग्य-विधाता बना चुकी है, वह हृदय फिर दूसरेके देने योग्य नहीं रहता।

भारतीय कुमारिकाएं एकबार ही वरण करती हैं और जिसको वे इच्छापूर्वक वरण कर लेती हैं उसे त्यागकर अन्य पुरुषके संसर्गकी स्वप्नमें भी इच्छा नहीं करतीं . मैं अपना शरीर कुमार नेमिनाथको समर्पण कर चुकी हूं उनके अतिरिक्त संसारके सभी पुरुष मेरे लिए पिता और भाईके समान हैं ।

आर्यकुमारियोंके प्रणको वज्रकी लकीर समझना चाहिए। अपने प्रणके सामने वे अपने जीवनका बलिदान करनेमें जरा नहीं हिचकतीं।

सखियो ! तुम सब मुझसे अपने उन जीवन सर्वस्व नेमि-कुमारजीसे स्नेह त्यागनेकी बात क्या कह रही हो । क्या यह भी संभव हो सकता है ? आर्यकुमारियोंके सामने तुम यह कैसा आदर्श उपस्थित कर रही हो ? मुझे मृत्यु स्वीकार है लेकिन यह कभी स्वीकृत नहीं हो सकता ।

मानव-जीवनका कुछ आदर्श हुआ करता है । अपने आदर्शके लिए जीवनका उत्सर्ग कर देना भारतकी महिलाओंने सीखा है, मेरा

जीवन उस आदर्शकी ओर अग्रसर हो रहा है, ऐसी स्थितिमें यह कभी भी नहीं हो सकता कि मैं अपने हृदय-सर्वस्वके लिए जो अक्षय प्रेमको स्थापित किए हुए हूं उसे विसर्जन कर दूं ? जो हृदय नेमिकुमारजीके निर्मल प्रेमसे ओतप्रोत होरहा है उसमें अन्य व्यक्तिके लिए कहीं भी स्थान नहीं हो सकता ।

जिन महिलाओंमें आर्यत्व और धर्मत्वका कुछ गौरव नहीं है संभव है वे ऐसा कुछ कर सकें । जिनका लक्ष्य प्राचीन आदर्शकी ओर नहीं है और जो इन्द्रिय वासना तृप्त तक ही जीवनका उद्देश्य समझती हैं, जो सांसारिक प्रलोभनोंके साम्हने अपने आपको स्थिर नहीं रख सकतीं उनके साम्हने इस आदर्शका भले ही कुछ महत्व न हो लेकिन मेरे साम्हने तो उसका महत्व स्थिर है ।

मैं यह स्पष्ट कह चुकी हूं, मेरा यह निश्चित मत है कि इस जीवनमें श्री नेमिकुमारजीको ही मैंने अपना पति स्वीकार किया है वही मेरे सर्वस्व हैं. वही मेरे ईश्वर हैं उनके अतिरिक्त किसी व्यक्तिसे मेरे संबन्धकी बात जोड़ना मेरे पातिव्रत धर्मको कलंकित करना है । अबतक मैं बहुत सुन चुकी अब भविष्यमें ऐसे शब्दोंको मैं एक क्षणके लिए नहीं सुन सकूंगी । मैं सूचित कर देना चाहती हूं कि कोई भी अब मेरे लिए ऐसे शब्दोंका प्रयोग न करें ।

धन्य ! कुमारी राजीमती ! तेरी अलौकिक दृढ़ताको धन्य है ! तेरा आत्मत्याग महान् है, तेरा आदर्श भारतीय महिलाओंमें अनंतकाल तक जागृतिकी ज्योति जगायेगा ।

वर्तमान कुमारियोंको महासती राजीमतीके इस निर्भय आदर्शसे

शिक्षा लेना चाहिए और उसका अनुकरण करना चाहिए। अपने धार्मिक विचारों और आत्म दृढ़ताको उन्हें अपने माता पिताके सामने स्पष्ट रूपसे रख देना चाहिये और अपनी मर्यादाकी रक्षा करना चाहिए। यदि वह उनकी इच्छाके विरुद्ध अयोग्य अथवा अधार्मिक वरसे उनका सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं तो उन्हें इसका स्पष्ट विरोध करना चाहिए। यह याद रखना चाहिए कि अपने ऊपर होनेवाले अनर्थ और अत्याचारके समय मौन रखना उसे उत्तेजना देना है, इस समयकी उनकी लज्जा हृदय—दौर्बल्यके अतिरिक्त कुछ नहीं है। यदि लज्जाके वश होकर राजीमती मौन रहकर अपने माता पिताकी आज्ञाको मान लेती तो आदर्श नष्ट होनेके साथ २ उसका जीवन भी नष्ट हो जाता। अपने सच्चे हृदयकी आवाजको माता पिताके सामने रखना, उन्हें सत्कर्तव्यकी ओर झुकाना और अपने हृदयके निश्चल विचारोंका परिचय देना महिमामयी भारतीय कन्याओंका कर्तव्य है।

राजीमतीके दृढ़ निश्चयके आगे किसीको कुछ भी कहनेका साहस नहीं हुआ और सभी जन मौन रह गए।

नेमिनाथजी रथ लौटाकर राज्य महलको चल दिए। वे वैराग्यके उन्नत शिखर पर चढ़ गए थे। विवाहके कंकणको मोह राजाके प्रबल साथीने और ममत्वका दृढ बंधन समझकर उसे तो उन्होंने तोड़ डाला, सभी वस्त्र उतारकर तपश्चरण करनेके लिए वे संसार वनकी ओर चल दिए। कामदेवका मदमर्दन करनेवाले उन योगी नेमिकुमारने कई वर्षों तक उस जंगलमें रहकर कठोर तपश्चर्या की। तपके बलसे उन्होंने पूर्ण समाधिको धारण किया और आत्माकी दिव्य ज्योतिको देखा।

महाराजाके संदेशको सुनकर शूरवीरोंके हृदयोंमें वीरत्वका संचार होने लगा । उनके प्रत्येक अंग जोशसे फड़कने लगे, किन्तु अपराजितकी बढ़ी हुई शक्तिके आगे उनकी वीरताका उबाल हृदयमें उठकर ही ठंडा पड़ गया, उन सबका उत्साह भंग हो गया ।

सामन्तोंमेंसे किसी एकका भी साहस नहीं हुआ कि जो वीरत्वका बीड़ा उठावे, वे एक दूसरेका मुख देखते हुए मौन रह गए । इसी समय एक सुन्दर कांतिवाले सुगठित शरीर युवकने राजसभाके मध्यमें उपस्थित होकर उस बीड़ेको उठा लिया । समस्त राज्यसभा आश्चर्यसे उस साहसी कांतिवान युवकका मुंह निरीक्षण करनेको उत्सुक हो उठी, किन्तु यह क्या ! उन्होंने देखा यह तो द्वारिकाके युवराज राजकुमार गजकुमार थे । उनके मुखमण्डलसे उस समय वीरताकी अपूर्व ज्योति प्रकाशित होरही थी । साहसके अखंड तेजसे चमकता हुआ उनका मुखमण्डल दर्शनीय था । कुमारने बीड़ेको उठाकर अपने वीरत्वको प्रदर्शित करते हुए दृढ़तापूर्वक कहा—" पिताजी ! आपके प्रतापके सामने वह कायर अपराजित क्या है ? आपके आशीर्वादसे मैं एक क्षणमें उसे आपके चरणोंके समीप उपस्थित करता हूं । आप आज्ञा प्रदान कीजिए, देखिए आपकी कृपासे वह अपराजित, पराजित होकर आपके चरणोंमें कितना शीघ्र पड़ता है और अपने दुष्कृत्योंके लिए क्षमा याचना करता हुआ नतमस्तक होता है । उसका प्रताप क्षीण होनेमें अब कोई विलम्ब नहीं है केवल आपकी आज्ञाकी ही देरी है ।"

युवक गजकुमारका ओजस्वी उत्तर सुनकर सामन्तगणोंके मुंह

नीचे हो गए । उनकी दृष्टि गजकुमारके चमकते मुखमण्डलपर अटक गई । सभी सभासदोंके मुंहसे निकली हुई धन्य २ की ध्वनिसे सभा-मंडप गूञ्ज उठा । महाराजाका हृदय हर्षसे परिपूर्ण होगया । उन्होंने कुमारकी ओर प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखा फिर उसके साहसकी परीक्षा करते हुए वे बोले—

प्रिय पुत्र ! मैं जानता हूं कि तू वीर और पराक्रमी है, लेकिन तेरी युद्धकला अभी अपरिपक्व है । अपराजित अनेक नरेशोंका सैन्य बल पाकर प्रचंड बलशाली होगया है । जब अनेक रणविजयी सेनापतियोंके जोश उसके सामने ठंडे हो रहे हैं तब तेरे जैसे बालकका उसके ऊपर विजय प्राप्त करने जाना नितांत हास्यजनक है । तेरे साहसके लिए धन्यवाद है, किन्तु उसके साथ युद्ध करनेका तेरा विचार करना भ्रमजनक है । मैं तुझे युद्धकी इस आगमें नहीं डालना चाहता । मैं खुद ही आक्रमण करके उस घमंडीका सिर नीचा करूंगा ।

पिताके शब्दोंको सुनकर कुमार अपने जोशको नहीं रोक सके । उन्होंने तेजपूर्ण स्वरसे कहा—पिताजी ! क्या अल्पवयस्क होनेसे सिंह-पुत्रोंका पराक्रम हाथियोंके सामने हीन हो सकता है ? क्या वह क्षीण शरीरधारी तेजस्वी सिंहसुत दीर्घ शरीरधारी गजेन्द्रके मस्तकको विदीर्ण नहीं कर डालता ? क्या आप नहीं जानते हैं कि छोटासा अग्निकण बड़े भारी ईंधनके ढेरको एक क्षणमें भस्म कर देता है ? मैं अल्पवयस्क हूं इसीसे आप मुझे शक्तिहीन तथा युद्धकला शून्य समझ रहे हैं, लेकिन आपका ऐसा समझना गलत है । पिताजी ! सिंह—बालकको कोई युद्धकला नहीं सिखलाता, उसमें तो स्वभावतः हाथियोंको पछाड़-

नेकी शक्ति रहती है। मैं इस युद्धमें अवश्य जाऊंगा, मेरे होते हुए आप युद्धके लिए जाएं यह हो नहीं सकता, दृढ़ता पूर्वक प्रण करता हूं, यदि आज ही उस दुष्ट अपराजितको पकड़ कर आपके चरणोंके निकट उपस्थित न कर दूं तो मैं आपका पुत्र नहीं। आज्ञा दीजिए, मेरा समस्त शरीर उस शक्तिहीन अपराजित नामधारी विद्रोहीका दमन करनेके लिए शीघ्रतासे फड़क रहा है।

कुमारके हृदयकी परीक्षा हो चुकी थी, अब उसके वीरता पूर्ण सत्साहसकी प्रशंसा करते हुए महाराज बोले—"वत्स! मैं तुमपर बहुत खुश हूं, तुम जाओ और युद्धकुशल सैनिकोंको अपने साथ ले जाकर उस उद्दण्ड अपराजितको पराजित कर अपनी शक्तिका परिचय दो।"

सैन्य बलसे गर्वित अपराजित उद्दंड बन गया था, वह बड़ी सेना लेकर महाराजा वासुदेवके आधीन एक नगरपर आक्रमण करनेको अग्रसर होरहा था। इसी समय गजकुमारकी संरक्षकतामें युद्ध करनेके लिये सजी हुई एक बड़ी भारी सैनाके आनेकी उसे सूचना मिली।

अपराजितने अपनी शक्तिका कुछ भी ध्यान न रखते हुए, गजकुमारकी सेना पर भीषण वेगसे आक्रमण किया। कुमारकी सेना पहलेसे ही सतर्क थी। उसने अपराजितके आक्रमणको विफल करते हुए प्रचण्ड गतिसे शस्त्र चलाना प्रारम्भ किया। कुमारकी सेनाके अचानक आक्रमणसे अपराजितके सैनिक क्षुब्ध होकर पीछे हटने लगे। अपनी सेनाको पीछे हटते देख अपराजितके क्रोधकी सीमा न रही। वह आगे बढ़कर सेनाको उत्साहित करता हुआ कुमारकी सेना पर तीव्र वेगसे शस्त्रपात करने लगा। गजकुमारने उसके सामने

अपने तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षासे उसके शस्त्रप्रहारको विफल कर दिया। अब दोनोंका आपसमें भीषण युद्ध होने लगा। विजयश्रीने कुमारकी ओर अपना हाथ बढ़ाया, अपराजितका प्रभाव प्रतिक्षण क्षीण होने लगा। एकाएक राजकुमारने अपने शस्त्र प्रहारसे घायल कर उसे नीचे गिरा दिया और उसे अपने मजबूत बंधनमें जकड़ लिया।

अपराजितको पकड़कर कुमारने महाराज वासुदेवके सामने उपस्थित किया। अपराजितने विनीत होकर उनका स्वामित्व स्वीकार किया और भविष्यमें उनके विरुद्ध सिर न उठानेकी प्रतिज्ञा की। महाराजने उसे क्षमा प्रदान किया और उसका राज्य उसे सौंप दिया।

महाराज, अपने पुत्रकी वीरता पर अत्यंत मुग्ध थे। उन्होंने उससे इच्छित वर मांगनेको कहा:—

राजकुमारने कहा—पिताजी! यदि सचमुच ही आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे इच्छित वर प्रदान कीजिए। मैं चाहता हूं कि मेरी जो इच्छा हो मैं वही करूं, राज्यकी ओरसे उसमें कोई बाधा उपस्थित न की जाय। महाराजने सोचा कि वैभव और ऐश्वर्यका उपभोगके अतिरिक्त कुमार और क्या कर सकेगा! पिताके हृदयमें पुत्रके प्रति कोई शंका नहीं थी। इसलिए उन्होंने प्रसन्न होकर उसे इच्छित वर देदिया।

(३)

यौवन, वैभव, अविवेकता और प्रभुता इनमेंसे एक भी पतनके लिए पर्याप्त है, किन्तु जहां चारोंका समुदाय हो वहांके अनर्थका क्या कहना!

प्रभुता प्राप्त होनेपर युवक राजपुत्र राजकुमार अपने यौवनके

वह मुझे तीव्र प्रलोभनोंकी मदिरा पिलाकर अनाचारके क्षेत्रमें स्वतंत्रता पूर्वक नाच नचा कर अपने सर्व पतनकी ओर तीव्र गतिसे अग्रसर करा रहा था। मैं उसका गुलाम बना हुआ अपनी आत्म-सत्ताको बिलकुल भूल गया था। ओह! मेरी आत्माका इतना घोर पतन! नहीं! अब नहीं होगा। मैं मदनके साम्राज्यको इसी समय नष्ट भ्रष्ट करूंगा। इसकी प्रभुता और इसके गर्वको चूर चूर कर दूंगा। वह उठा, उसने उठकर भगवान्के दिव्य चरणोंपर अपने मस्तकको डाल दिया, और गद्गद् कंठसे बोला—भगवन्! मैं महा पतित हूं, मैंने सांसारिक विलास वासनामें अपना जीवन गंवाकर नष्ट कर डाला है। इतना ही नहीं मैंने उन पाप कृत्योंके पीछे कमर बांध ली थी जिनके कटु फलोंका स्मरण कर मेरा हृदय कांप उठता है। प्रभो! आप भक्त-वत्सल हैं, दयासागर हैं, मेरा मल धोनेके लिये आप ही समर्थ हैं। मुझ पर दया कीजिए और मेरे जैसे पतितको अपनी शरणमें लेकर रक्षा कीजिए, आप मेरे आत्म सुधारका मार्ग प्रदर्शित कीजिए।

दयावत्सल भगवान् नेमिनाथने गजकुमारके पश्चात्ताप पूर्ण हृदयका करुण क्रन्दन सुना, वे बोले—"कुमार! तूने पापोंके लिए तीव्र पश्चात्ताप कर उनके कटु फलोंको बहुत कुछ कम कर लिया है। पूर्ण पाप फलको कम करने, उन्हें नष्ट करने और अन्तःकरणको सुधारनेके लिए प्रायश्चित्तके अतिरिक्त कोई उत्तम उपाय नहीं है। जिस तरह तेज आंच पाकर मैल जल जाता है उसी तरह पश्चात्तापकी तीव्र जलनसे कठिनसे कठिन पापोंका फल नष्ट होजाता है, लेकिन प्रायश्चित्त हृदयसे होना चाहिए। पाप कृत्योंके लिए हृदयमें पूर्ण ग्लानि होना चाहिए। कुमार! तू अपने

किए हुए भयानक पाप फलसे शीघ्र ही सावधान होगया, यह तेरा शुभोदय समझना चाहिए। अब तेरा आत्मकल्याण होनेमें कुछ समयका ही विलम्ब है। तू अपनी आत्माको अब अधिक खेदित मत कर, आत्मामें अनन्त शक्तियां हैं, उसी आत्म-शक्तिके प्रकाश मय पथ पर चलकर तू अपना कल्याण कर।

भक्तवत्सल नेमिनाथकी दयापूर्ण वाणीसे युवक गजकुमारको बहुत संतोष मिला। वह प्रसन्न होकर बोला-भगवन्! आपकी मुझ पापात्मा पर यदि इतनी अनुकम्पा है तो मुझे महाव्रतोंकी दीक्षा दीजिए, जिनसे मैं अपना जीवन सफल कर सकूं।

भगवानने उसे दया करके साधु दीक्षा प्रदान की। काम-तृष्णामें लिप्त हुआ मदोन्मत्त युवक गजकुमार नेमिनाथकी पवित्र शरणमें आकर एक क्षणमें कल्याणके महाक्षेत्रमें उतर पड़ा। उसका पाप पंक धुल गया, वह दीक्षा लेकर भयानक वनमें तीव्र तपश्चरण करने लगा।

(६)

प्रति हिंसा! बदला! आह बदला कितनी भयंकर अग्नि है। ईंधनके अभाव होनेपर अग्नि शांत हो जाती है। किन्तु प्रतिहिंसा अग्नि ओह! वह निरन्तर हृदयमें तीव्र गतिसे प्रज्वलित होती रहती है और प्रतिक्षण बढ़ती हुई अपने प्रतिद्वंदीके सर्व नाशकी बाट देखती रहती है।

अपमानने पांडुल सेठके हृदयमें तीव्र स्थान कर लिया था। वैभवका नष्ट होना मानव किसी तरह सहन कर लेता है,

कठिनसे कठिन आपत्तियोंके सामने भी वह अपना हृदय कठोर बना लेता है, महायुद्धमें हंसते हुए अपने प्राणोंको न्यौछावर करनेमें नहीं हिचकता, किंतु अपमान! अपना थोड़ा भी अपमान वह सहन नहीं कर सकता। अपमान ओह! अपमानकी गुप्त चोट बड़ी भयंकर होती है। वह हृदयमें एक ऐसा घाव कर देती है जो कभी नहीं भरता, घावकी वेदनामें उसका हृदय सदा ही व्याकुल होता रहता है। कठिन शस्त्रका घाव शीघ्र ही भर जाता है। धन वैभव फिरसे मिलजाता है किन्तु अपमानका बदला लिए बिना कभी किसी प्रकार शांत नहीं होता।

उद्दंड युवक गजकुमार द्वारा अपनी पत्नीके अपमानकी बात बिलकुल अभीतक नहीं भूला था, उसका वह घाव आज तक उसी तरह हरा भरा था। राज्याधिकारका प्रभाव और गजपुत्रकी शक्तिके कारण वह उस समय अपनी पत्नीके सतीत्व हरणके बदलेको नहीं चुका सका था। किन्तु जब कभी उसका स्मरण हो आता था, तब क्रोधसे उसका मुख मण्डल रक्तवर्ण हो जाता था। सारा शरीर कांपने लगता और वह साक्षात यमराजकी तरह प्रतीत होता था, किन्तु अपनी हीन शक्तिको विचार कर उसका क्रोधावेश भंग होजाता था।

आज अनायास ही वह वनमें घूम रहा था, घूमते हुए उसकी दृष्टि ध्यानमें मग्न हुए गजकुमार मुनिके नग्न शरीर पर जा पड़ी—उसकी प्रतिहिंसाकी अग्नि भड़क उठी। गजकुमारको ध्यानमग्न देखकर क्रोधकी सुलगती आग धधक उठी। वह दांतोंको मिसमिसाता हुआ क्रोधपूर्ण स्वरसे बोला—"मायावी! धूर्त! आज इस तरह तपश्चरणका ढोंग रचे

वसंतसेनाकी अट्टालिका ही उसका निवास स्थान बन गई। पिताके द्वारा उपार्जित अपरिमित धनसे वसंतसेनाका घर भरा जाने लगा।

उसकी पतिपाणा पत्नी कितनी रोई, उसने कितनी प्रार्थनाएं कीं लेकिन चारुदत्तके कामुक हृदयने उनको ठुकरा दिया, माता सुभद्रा आज अपने किए पर पछता रही थी। उसने प्रयत्न किया था, अपने प्रिय पुत्रको गृहजीवनमें फंसानेका, लेकिन परिणाम विपरीत ही निकला। वह गृह-जालमें न फंसकर वेश्याके जालमें फंस गया। चारुदत्तके जीवनके सुनहरे बारह वर्ष वेश्याके अरुण अधरोंपर लुट गए। उसका धन वेश्याके यौवनपर लुट गया। आज अब वह धनहीन था, उसकी पत्नी के बचे हुए आभूषण भी प्रेमिकाके अधर मधु पर बिक चुके थे।

कलिंगसेनाने आज बारह वर्षके बाद अपनी पुत्रीको शिक्षा दी थी। वह बोली—वसंत! अब तेरा यह वसंत तो पतझड़ बन गया, अब इस सूखे मरुस्थलसे क्या आशा है? अब तो यह निर्धन और कंगाल होगया है, अब तुझे अपने प्रेमका प्याला इसके मुंहसे हटाना होगा, अब तुझे किसी अन्य वैभवशालीकी शरण लेनी होगी।

वसंतसेनाका माथा आज ठनका था, वह कलिंगसेनाका जाल समझ गई थी, वसंतसेनाको चारुदत्तसे अकृत्रिम स्नेह होगया, वह उसके वैभव पर नहीं किन्तु गुणोंपर अपने यौवनका उन्माद न्योछावर कर चुकी थी। सरलहृदय चारुदत्तको वह धोखा नहीं देना चाहती थी। उसने कांपते हृदयसे कहा—मां मेरे प्रेमके संबंधमें तुझे कुछ कहनेका अधिकार नहीं है। चारुदत्त मेरा प्रेमी नहीं किन्तु पति है।

वेश्या होकर भी मैंने उसे पति रूपमें ग्रःण किया। उसका हृदय महान है। उसने अपना अपरिमित द्रव्य मेरे यौवन पर नहीं किन्तु निष्कपट प्रेमपर कुर्बान किया, मैं उसके प्रेमसे लड़ाती लतिकाको नहीं तोड़ सकती।

मांने कहा—"वसंत! वेश्याकी पुत्रीके लिए पति और प्रेमके शब्दोंको केवल प्रपंचताके लिए ही अपने मुंहपर लाना होता है, वास्तवमें न तो उसे किसीसे प्रेम होता है और न कोई उसका पति होता है। वेश्या-पुत्री होकर यह अनहोनी बात तेरे मुंहसे आज कैसे निकल रही है? प्रिय वसंत! हमारा कार्य ही ऐसा है जिसे विधिने पैसा पानेके लिए बनाया है, प्रेमके लिए नहीं। यदि हम एकसे इस तरह प्रेम करें तो हमारा जीवन निर्वाह ही नहीं होसकता। मैं तुझसे कहे देती हूं, अब अपने द्वार पर चारुदत्तका आना मैं नहीं देख सकूंगी।"

वसंतसेनाने यह सब सुना था लेकिन उसका हृदय तो चारुदत्त-के प्रेमपर बिक चुका था, वह उन्हें इस जीवनमें धोखा नहीं दे सकती थीं, जो कुछ वह कर नहीं सकती थी उसे कैसे करती? जिसके चरणोंके निकट बैठकर उसने प्रेमका निश्छल संगीत सुना था, जिसके हृदयपर उसने अपने हृदयको न्योछावर किया था, जिसके अकपट नेत्रोंका आलोक उसने अपने अरुण नेत्रोंमें झलकाया था, जो सरल स्मृतियां उसके अन्तस्थलपर चित्रित होचुकी थीं उन्हें वे कैसे भुला सकती थी? बस प्रेम दानके अतिरिक्त कुछ भी नहीं कर सकी।

चारुदत्त अब भी उसी तरह आता था और जाता था। यद्यपि वह निर्धन हो चुका था परन्तु वसंतसेनाके प्रेमका द्वार उसके लिए आज भी उसी तरह खुला था।

कलिंगसेना अधिक समय तक यह सब न देख सकी, एक रात्रिको जब चारुदत्त, बसंतसेनाके साथ गाढ़ निद्रामें सो रहा था, उसने अपने सेवकोंके द्वारा उसे उठवाकर घर भेज दिया।

(२)

चारुदत्तके उन्मादका नशा आज प्रथम दिन ही टूटा था, आज उसकी पत्नीने उसके नेत्रोंमें एक अनोखी ज्योति देखी थी। उसने भी नेत्र भरकर आज अपनी पत्नीके सौन्दर्यका अवलोकन किया था। दोनोंके नेत्र एक विचित्र द्विविधासे भरे हुए थे।

चारुदत्तके हृदय पर बसंतसेनाके प्रेमका आकर्षण अभी था लेकिन उसकी निर्धनताने उसे लज्जित कर दिया था। आज अपना अपार द्रव्य खोकर उसने द्रव्यके मूल्यको समझा था।

दुखी माता और पत्नीने निर्धनतासे संतापित चारुदत्तके हृदयको स्नेहरससे सिंचन किया। उसे अपनी कंगाली खटकी, द्रव्योपार्जनकी चिंताने उसके सोये मनको आज जगा दिया था।

पत्नीके पास छिपे हुए गुप्त धनको लेकर उसने व्यापारकी दिशामें प्रवेश किया। उसने द्रव्य कमानेमें अपना मन और शरीर दोनोंको व्यस्त कर लिया था, लेकिन दुर्भाग्यने उसका पीछा नहीं छोड़ा था। लाभकी इच्छासे उसने व्यापार किया था, लेकिन उसमें वह अपना बचा हुआ सारा धन खो बैठा।

चारुदत्त द्रव्य कमानेके लिये पागल हो गया था। वह अपने पौरुष और साहसकी बाजी धनके लिये लगा देना चाहता था। अपने जीवनको भी वह धनके पीछे खतरेमें डाल देना चाहता था, उसने ऐसा किया भी।

धन कमानेके लिए अपने कुछ साथियोंके साथ वह रत्नद्वीपको चल दिया। मार्गमें जाते हुए उसे तथा उसके साथियोंको लुटेरोंने लूट लिया था। चारुदत्तके पास धन नहीं था इसलिए वे उसे अपने साथ पकड़ कर ले गए। वे उसका देवी पर बलिदान कर देना चाहते थे, लेकिन उनके सरदारको उसकी युवावस्था और सुन्दरता पर तरस आ गया, उन्होंने उसे एक भयानक जंगलमें छोड़ दिया।

जंगलमें उसे एक जटाजूट तपस्वीके दर्शन हुए। तपस्वीने उसे अपनी मोहक बातोंके जालमें फंसाना प्रारम्भ किया। वह बोला—"युवक! मालूम पड़ता है, तुम धनकी लालसासे ही जंगलोंमें पर्यटन कर रहे हो, मैं तुम्हें इस चिंतासे अभी मुक्त किए देता हूं देखो! इस जंगलमें एक बावड़ी है जिसमें रसायन भरा हुआ है। उस रसायनको प्राप्त कर लेनेपर तुम चाहे जितना स्वर्ण उससे तैयार कर सकते हो, लेकिन तुम्हें इसके लिए थोड़ा साहस और दृढ़तासे कार्य लेना होगा, मैं तुम्हें एक रस्सेसे बांधकर उस बापीमें छोड़ दूंगा और तुम्हें एक तूंबी दूंगा, पहले एक तूंबी रसायन तुम्हें मुझे लाकर देना होगी इसके बाद तो वैभवका दरवाजा तुम्हारे लिये खुला ही है, तुम चाहे जितना रसायन अपने लिए ला सकते हो।

द्रव्योपासक सरल-हृदय चारुदत्त तपस्वीकी मीठी बातोंमें आ गया, उसने अपनी स्वीकृति दे दी। तापसीके अब पौबारह थे। वह चारुदत्तको बापीके निकट ले गया और उसके गलेमें रस्सी बांधकर हाथमें एक तूंबी देकर उसे बापीमें उतार दिया।

बापी बहुत गहरी थी, उसमें काफी अंधेरा भी था, नीचे

कर उसने ज्योंही तूंबीको वापीमें रस भरनेके लिए डाला उसे किसी व्यक्तिके कराहनेकी आवाज सुनाई दी, भयसे उसके होश गुम होगए। वापीमें पड़े व्यक्तिने बड़े धैर्यसे हाथ हिलाया, वह धीमे स्वरमें बोला—अभागे पथिक ! तू कौन है, तेरा दुर्भाग्य तुझे यहां खींचकर लाया है। मैं तेरा हितचिंतक हूं, तूंबी ले जानेके पहिले तू मेरी बात सुनले, इससे तेरा कल्याण होगा।

चारुदत्त वापीमें पड़े व्यक्तिकी बात ध्यानसे सुनने लगा। वह बोला—यह तपस्वी बड़ा दुष्ट है। इसने मुझे तेरी तरह रसायनका लोभ देकर इस वापीमें पटका है। एकबार मैंने उसकी तूंबी भरकर उसे दे दी, लेकिन दूसरीबार जब मैं रसायन लेकर रस्सेसे ऊपर चढ़ रहा था इस निर्दयने रस्सेको बीचमेंसे काट दिया जिससे मैं इस वापीमें पड़ा सड़कर अपने जीवनकी घड़ियां व्यतीत कर रहा हूं, अब मेरी मृत्युमें कुछ समय ही शेष है इसलिए मैं तुझे चेतावनी देता हूं तू इस दुष्टके जालसे शीघ्र निकलनेका प्रयत्न कर।

चारुदत्तकी बुद्धि कुंठ कर गई थी, वह अपने छुटकारेके लिए कुछ भी नहीं सोच पाता था। उसने करुण होकर अपरिचित व्यक्तिसे ही इस मृत्यु-मुखसे निकलनेका मार्ग पूछा—

अपरिचितने कहा—चारुदत्त ! तुझे अब यह करना होगा, तू इस तुम्बीको लेकर उस दुष्ट तपस्वीको दे दे और दूसरी बार जब वह तेरे पकड़नेको रस्सी डालेगा तब उसमें इस बड़े पत्थरको जो मैं तुझे दे रहा हूं बांध देना और तू इस वापीकी उस सीढ़ी पर जो कुछ आगे दिख रही है उस पर बैठ जाना, तुझे बंधा देखकर वह दुष्ट

तापस रस्सा काट देगा और तेरी जगह यह पत्थर बापीमें गिर जायगा। इसके बाद मैं तुझे वापीसे निकलनेका उपाय बतलाऊंगा। अब अधिक समय नहीं है, यदि वह दुष्ट अपनी इस बातको सुन लेगा तो तेरे प्राण बचाना कठिन हो जायगा।

चारुदत्तने तूम्बी रससे भरकर ऊपर पहुंचा दी, तापसी तूम्बी लेकर प्रसन्न हुआ। दूसरी बार चारुदत्तने अपने स्थान पर पत्थर बांध दिया, तापसीने उसे बीचसे ही काट दिया। पत्थर बावड़ीमें गिरा और चारुदत्तके प्राण बच गए।

चारुदत्त अपने प्राणोंको सुरक्षित देख प्रसन्न हुआ, उसने वापीमें पड़े व्यक्तिसे बाहिर निकलनेका मार्ग पूछा, अपरिचितने कहा—संध्या समय इस वापीका रस पीनेके लिए एक बड़ा गोह आता है, आज संध्याको भी वह आयगा। तुम उसकी पूछ पकड़ कर इस वापिकासे निकल जाना, भय मत करना, पूछ मजबूतीसे पकड़े रहना, गोहकी कृपासे तुम वापीसे बाहिर निकल जाओगे।

अपरिचित व्यक्तिके उपकारको चारुदत्त नहीं भूल सका, वह उसकी सहायता करना चाहता था, लेकिन अपरिचित अब मृत्युके सन्निकट था, प्रयत्न करके भी वह उसे बाहिर न निकाल सकता था, उसने नमोकार मंत्र जाप करनेके लिए दिया और उसका महत्व समझाया।

गोहकी कृपासे वह अब वापीके बाहिर था, लेकिन इस भयानक जंगलमें अपना कुछ कर्तव्य नहीं सोच सकता था। संध्या समय हो गया था, वह तापसीकी दृष्टिसे बचना चाहता था, इसलिए वह जंगलमें एक ओर बढ़ चला।

वह मरी नहीं थी, उसके प्राण अभी शेष थे। कलिंगको यह सब मालूम हो चुका था, इसने भय और उत्पातकी आशंकासे उसे एक कोठरीमें बन्द कर दिया।

वसंतसेना उस कोठरीमें बन्द रहते हुए बाहरके लोगोंकी आवाज सुनती थी, उसे यह निश्चित रूपसे मालूम हो गया था कि मेरा प्रियतम चारुदत्त मेरे वधके अपराधमें पकड़ा गया है, उसे यह भी पता लग गया था कि राजा द्वारा आज उसे फांसीका दण्ड दिया जायगा। उसके प्राण अपने प्रियतमको बचानेके लिये तड़फड़ा उठे, परन्तु अपनी असहाय अवस्थाको देखकर उसका आत्मा विफल हो रहा था। अंतमें एक उपाय उसे सूझा। कोठरीके ऊपर एक खिड़की थी, वह किसी तरह उस स्थानपर पहुंची। अब उसने चिल्लाना प्रारम्भ किया, उसकी चिल्लाहट सुनकर एक व्यक्ति उसके निकट आया।

वसंतसेनाके गलेमें एक हार अब भी था। उसने उस हारका लालच देकर उस व्यक्तिसे द्वार खोलनेको कहा। वह अपने प्रयत्नमें सफल हुई, कोठरीका द्वार खुला था।

वसंतसेना अशक्त थी। न्यायद्वार तक जानेकी शक्ति उसमें नहीं थी। लेकिन आज न जाने किसी दैवी शक्तिने उसके अंदर बेवेश किया था। आज तो यदि उसे सात समुद्र पार करना हो तो यह पार कर जाती ऐसी शक्तिका आवाहन उसने अपनेमें किया था।

चारुदत्तको वसंतसेनाके वधके अपराधमें प्राण दंड दिया जा चुका था। वधिक उसे वध स्थलपर ले जा चुके थे। दर्शकके रूपमें चंपापुरकी समग्र जनता उसके चारों ओर चित्र लिखितसी खड़ी थी।

पत्नी और माता शोक समुद्रमें गोते लग रही थी। फांसीका फंदा गलेमें अब पड़ा, कि तब निर्दय-हृदय वधिक चारुदत्तके प्राणोंको कुछ क्षणका विश्राम ही दे रहे थे। इसी बीच बहुत दूरसे हांफती चिल्लाती हुई वसंतसेना दर्शकोंको दिखी। वह अब दर्शकोंके बिलकुल निकट आ गई थी। बोलनेकी शक्ति उसमें नहीं थी, उसने वधिकोंको हाथके इशारेसे आगे बढ़नेको रोकते हुए एक क्षणके लिए गहरी सांस ली। फिर उसने वधिकोंसे आज्ञाके स्वरमें कहा—

वधिक! श्रेष्ठी चारुदत्तके बंधन खोल दो—वह अपराधी नहीं है। मैं बतलाऊंगी अपराधी कौन है। मुझे राजाके सामने ले चलो।

चारों ओरसे हर्षकी ध्वनि उठी। राजाको यह सब मालूम हुआ। वह शीघ्र ही वध स्थलपर आया, वसंतसेनाने कर्णिकदत्तको अपने प्राण वधका अपराधी सिद्ध किया। चारुदत्त निर्दोष साबित होकर छोड़ दिया गया।

वसंतसेना अब चारुदत्तके कुटुम्बमें सम्मिलित हो गई थी। चारुदत्तकी पत्नीने अपने हृदयके उच्चतम स्थानमें जगह दी थी। वह उसे अपने प्राणोंसे अधिक प्रिय समझने लगी थी, उसके हृदयका द्वेष धुल गया था, पतिके सिंहासन पर दोनोंका आसन था। किसीको इससे द्वेष नहीं था, अनुताप नहीं था, माताने अपने प्रेमका प्रसाद दोनोंमें पुत्रवधुओंकी भावनाके रूपमें बांटा था।

वसंतसेनाका स्नेह चारुदत्त पर अब चौगुना बढ़ गया था, लेकिन वह स्नेह वासनाका नहीं था, उसमें कोई कामना नहीं थी,

(१४)

आत्मजयी पार्श्वनाथ ।

(महान् धर्मप्रचारक जैन तीर्थंकर)

पार्श्वकुमार आज प्रातःकाल ही भ्रमण करके अपने साथियों सहित वापिस लौटे थे । रास्तेमें उन्होंने जटा बढ़ाए और लंगोटी पहिने हुए एक साधुको देखा वह अपनी धूनिके लिए एक बड़े भारी लकड़ेको फाड़ रहा था । एक ओर उसकी धूनि सुलग रही थी । उसकी जटाएं पैरों तक लटक रही थीं । तमाम शरीरमें धूल लगी हुई थी । एक रंगी हुई लंगोटी उसके शरीर पर थी, पास ही मृग छाला और चिमटा पड़ा हुआ था । देखनेसे वह घमंडी मालूम पड़ता था ।

पार्श्वकुमार उस तपस्वीके सामनेसे निकले, उसने अपने सामनेसे निकलते हुए देखकर उन्हें बुलाया और बड़े घमंडके साथ बोला— क्योंजी ! तुम बड़े घमंडी और दुर्विनीत मालूम पड़ते हो ।

श्री पार्श्वनाथको पूर्व वैरीका उपसर्ग व धरणेन्द्र तथा पद्मावती देवी द्वारा उपसर्ग निवारण ।

कुमारने सरलतासे कहा:—कहिए। मैंने आपका क्या अपमान किया है?

तपस्वी नरा जोशसे बोला—देखो, मैं तुमसे बड़ा हूं, तपस्वी हूं इसलिये तुम्हें मुझे नमस्कार करना चाहिए था।

कुमार नम्र होकर बोले:—बाबा खाली भेष देखकर ही मैं किसीको नमस्कार नहीं करता, गुण देखकर करता हूं।

तपस्वी क्रोधित स्वरसे बोला:—क्योंजी, क्या मुझमें गुण नहीं है? देखो! मैं रातदिन कठिन तप करता हूं और बड़ी२ तकलीफोंको सहता हूं। मैं बड़ा तपस्वी और महात्मा हूं।

कुमारने फिर कहा: अज्ञानतासे अपने शरीरको अपने आप दुःख पहुंचाना तप नहीं कहलाता। बड़ी तकलीफें सहन कर लेना भी तप नहीं है। गरीब और निर्धन लोग तो हमेशा ही कठिनसे कठिन तकलीफें सहन करते हैं। जानवर भी हमेशा सर्दी गरमी और भूख प्यासको सहते हैं लेकिन वह तप नहीं कहलाता। यह तो आत्म हत्या है।

तापसका क्रोध और भी बढ़ गया। वह बोला—देखो, मैं आगके सामने बैठा हुआ कितना कठिन योग साधन करता हूं।

कुमार उसी तरह फिर बोले:—आगके सामने बैठना ही तप नहीं है। इसमें तो अनेक जीवोंकी हिंसा ही होती है। बाबाजी, ज्ञानके बिना योग साधन नहीं हो सकता, यह तो केवल ढोंग है।

तापस अपने क्रोधको नहीं रोक सका। वह बोला:—ऐं! क्या कहा? मैं योगी नहीं हूं यह सब मेरा ढोंग है? आगमें जीवकी हिंसा होती है? अरे! तू क्या कह रहा है, मैं चुपचाप तेरी सब बातें सुन

सुदर्शन—नगरके प्रसिद्ध श्रेष्ठी सागरदत्तका सुपुत्र था। वह युवा हो चुका था। लेकिन उसका विरक्त मन विवाहकी ओर अभी तक आकर्षित नहीं हुआ था। माताने उसकी शादीके लिए अनेक प्रयत्न किए थे कई सुन्दर कन्याओंको वह निर्वाचन क्षेत्रमें ला चुकी थी। लेकिन सुदर्शनके मनपर कोई भी अपना प्रभाव नहीं डाल सकी थीं। उसका मन विषय विरक्त अबोध बालककी ही तरहका था।

मित्र उसे अपनी विनोद मंडलीमें लेजाते थे लेकिन मौनके अतिरिक्त उन्हें सुदर्शनसे कुछ नहीं मिलता था। वे उसकी इस नीरसतासे चिंतित थे। लेकिन उनका कोई प्रयत्न सफल नहीं होता था। आज उसके मित्रने उसे चिंतित देखा था। सुदर्शनकी भाव-भंगीसे वह उसके हृदगत विचारोंको समझ गया था। उसकी इस बेबसी पर प्रसन्न था वह अपने मनमें बोला—मालूम होगया, आज यह महात्मा किसी सुन्दरीके रूप जालमें फंस गये हैं। मदनदेवका जादू आज इनपर चल गया है इसीलिए आज यह किसी रमणीके रूपके उपासक बने बैठे हैं। मैं तो यह सोच ही रहा था, रमणीके कुटिल कटाक्षके सामने इनका ज्ञान और विवेक अधिक दिन तक स्थिर नहीं रहे सकेगा। आज वह सब प्रत्यक्ष दिख रहा है। वह सुदर्शनके हृदयको टटोलते हुए बोला—मित्र! आज आप इस प्रकार चिंतित क्यों होरहे है? क्या आपके पूजा पाठमें आज कोई अंतराय आगया है? अथवा आपके स्वाध्यायमें कोई उपसर्ग उपस्थित होगया है? बतलाइए आपके सिरपर यह चिंताका भूत क्यों सवार है?

सुदर्शन मानो किसी स्वप्नको देखते हुए जाग उठा हो बोला—

श्री १००८ भगवान पार्श्वनाथस्वामी (प्राचीन प्रतिमा)

ओह! मित्र आप हैं? कुछ नहीं, आज मैं बैठा बैठा कुछ यूं ही विचार कर रहा था।

मित्र उसके मनकी भावनाओंको कुरेदता हुआ आगे बोला— नहीं, मालूम होता है आज आपके भोजनमें अवश्य ही कोई अभक्ष्य पदार्थ आगया होगा। अथवा आपके सामने किसीने रमणी पुराण आरम्भ कर दिया होगा इसीसे आपका हृदय........।

सुदर्शन अपने हृदयके वेगको स्थिर कर मित्रको आगे बढ़नेसे रोकता हुआ बोला—"नहीं मित्र! आप इतनी अधिक कल्पनाएँ क्यों कर रहे हैं? आज ऐसी कोई बात नहीं हुई है, मैं पूर्ण स्वस्थ हूं, आप मुझे आज इस तरह क्यों बना रहे हैं?

मित्रने हंसीका फव्वारा छोड़ते हुए कहा—वाह मित्र! खूब रहे उलटे चोर कोतवालको डांटे! आपने खूब कहा, मैं आपको बना रहा हूं या आप अपने मनका हाल छिपा कर मुझे अंटसंट उत्तर देकर बना रहे हैं। लेकिन यह याद रखिए जाननेवालोंसे आप मनका हाल नहीं छिपा सकते, छिपानेकी आप कितनी ही कोशिशें कीजिए सब बेकार होंगी, आपकी आंखें तो साफ साफ उत्तर दे रही हैं कि आज आप किसी खास तरहकी चिंतामें ग्रस्त हैं।

सुदर्शन कच्चा खिलाड़ी था। उसने प्रेमकी चौसरका पासा फेंकनेको अभी उठाया ही था; वह अपने मनकी उमड़ती भावनाओंको दबा नहीं सका। वह खुल कर बोला—मित्र! सचमुच आप मेरी अवस्थाको जान गए हैं, क्या करूं मनका भेद काल छिपाने पर भी

स्पष्ट हो हो जाता है। आह! आज मैंने जबसे उस सुन्दरी रमणीको देखा है तभीसे.....

हां हां, मैं समझ गया। मित्रने बीचमें रोकते हुए कहा—"तभीसे आपको संसारसे पूर्ण विरक्ति होगई है। आपका मन घृणासे भर गया है। अब आप किसी रमणीका मुंह भी नहीं देखना चाहेंगे।"

नहीं मित्र! आप तो मुझे अपने मनका हाल ही नहीं कहने देते, सुदर्शनने बड़ी ही व्यथासे कहा—"सुनिए, तभीसे मेरा हृदय किसी गुप्त वेदनासे तड़प रहा है।"

मित्र, अभी इस विनोदमें और रस लेना चाहता था। आश्चर्य प्रकट करता बोला—ऐं मित्र! वेदना! और हृदयमें? क्यों? क्या उसने आप पर कुछ आघात किया है, आप जैसे सरल और सज्जन व्यक्तिके हृदय पर! तब तो वह अवश्य ही कोई पाषाण-हृदया होगी। देखूं, कोई विशेष चोट तो नहीं आई है?

सुदर्शनका हृदय अब अधीर हो उठा। वह बोला—"मित्रवर! अब आप अधिक विनोदको स्थान मत दीजिए। मेरी वेदनाको अधिक मत भड़काइए, सचमुच ही मैं उसी समयसे उसकी मोहनी मूर्ति पर आकर्षित हो गया हूं।"

"ओह! मित्र! क्या कहा? आप मुग्ध होगए हैं? उसकी लक्ष्य-कलापर। बेशक, क्यों न हो, लक्ष्य भी उसने आपके हृदय पर अचूक किया है तब तो आप उसे अवश्य कुछ पारितोषक देंगे।" देवदत्तका विनोद अन्तिम था।

सुदर्शनका हृदय देवदत्तके परिहाससे आहत हो चुका था।

हुने लगती है। प्रेम वह मंत्र है जिसमें वासना और विलासकी भावनाएं नष्ट होजाती हैं। प्रेम वह अपूर्व वस्तु है जिसके द्वारा मानव ईश्वरके साक्षात् दर्शन कर सुख और शांतिके अनंत साम्राज्यको प्राप्त करता है। तू इस पवित्र शब्दका गला मत घोंट। अगर तू प्रेम ही करना चाहती है तो अपने पवित्र पातिव्रत धर्मसे प्रेम कर जो तेरे जीवनको स्वर्गीय बना देगा।

कपिलाका मन अभी तक शांत नहीं हुआ था। वह अपने अंतिम शस्त्रका प्रयोग करना चाहती थी। उसने अपने नेत्रोंको अधिक मादक बना लिया था; वचनोंमें मधुकी मधुरताका आह्वान कर लिया था। वह बोली—"प्राणेश! आपके मुंहसे धर्म धर्मकी बात मैं कई-बार सुन चुकी हूं, लेकिन मैं नहीं समझती कि धर्म क्या है? और उससे क्या सुख मिलता है? कुछ समयको यह मान भी लें कि तरह तरहके कष्ट देकर शरीरको तपाग्निमें तपाकर और प्राप्त सुखोंका त्याग कर हम धर्मके द्वारा परलोकमें स्वर्ग सुख प्राप्त कर लेंगे, लेकिन आपके उस धर्मके साथ भी तो उसी स्वर्गीय सुखका सवाल लगा हुआ है। फिर परलोकके अप्राप्त सुखोंकी लालसामें वर्तमान सुखको ठुकरा देना ही क्या धर्मकी आपकी व्याख्या है? तब इस व्याख्याको आप पर-लोकके लिए ही रहने दीजिए। इस लोकके लिए तो इस समय जो कुछ प्राप्त है उसे ग्रहण कीजिए। स्मरण रहे आपके शब्द जालमें वह शक्ति नहीं है जो उन्मत्त रमणीके तर्कके सामने स्थिर रह सके। उसे तो आप अब रहने दीजिए और मुझे अपना आलिंगन देकर मेरे जीवन और यौवनको कृतार्थ कीजिए।

कपिला अपना कथन समाप्त कर आगे बढ़ी, वह सुदर्शनका आलिंगन करना चाहती थी। सुदर्शनने देखा, जानेका द्वार बंद था। एक क्षणमें भारी अनर्थकी आशंका उसे मालूम हुई। उसने देखा ज्ञानसेअब काम नहीं चलता है। उसने अब छलका आलम्बन लिया, अपनेको पीछे हटाते हुए वह बोला—

" थोड़ासा ठहरिए, आप यह क्या अनर्थ कर रही हैं ? आप सोच रखिए आपको मेरे आलिंगनसे कुछ भी तृप्ति नहीं मिलेगी, केवल पश्चात्ताप मिलेगा। आप जिस आशासे मुझे ग्रहण करना चाहती हैं वह आशा आपकी पूर्ण नहीं होगी। "

कपिला उत्तेजित होकर बोली— 'मेरी आशा अवश्य पूर्ण होगी, क्यों नहीं होगी ? आपका आलिंगन मुझे जीवनदान देगा।"

सुदर्शन उसी स्वरमें बोला—" नहीं होगी, कभी नहीं होगी, रमणी ! तू जिसे अनंग रससे भरा सुन्दर प्याला समझ रही है उसमें तृप्ति प्रदान करनेकी जरा भी शक्ति नहीं है। जिसे तू शांति प्रदायक चन्द्रबिंब समझ रही है वह राहुके कठिन ग्राससे ग्रसित है। पुरुषत्व विहीन और रति क्रिया क्षीण पुरुषके आलिंगनसे तुझे क्या तृप्ति, क्या सुख मिलेगा ? इसमें न तो रतिदान देनेकी शक्ति है और न मदनकी स्फूर्ति है !"

कपिला चौंककर बोली—" हैं ? आप यह क्या कह रहे हैं ? नहीं मुझे विश्वास नहीं होता, आप यह सब मुझे छलनेका प्रयत्न कर रहे हैं। मैं आपकी बातका विश्वास नहीं कर सकती।"

सुदर्शनने अत्यंत विश्वासके स्वरमें कहा—"आश्चर्य है, तुम्हें

मेरी बातपर विश्वास नहीं होता? तुम्हारी समझमें क्या यह नहीं आता कि जिस रमणीकी दिव्य रूप राशिके उन्मत्त लीला विलासने तीक्ष्ण और कुटिल कटाक्ष पातमें स्निग्धता और तृप्तिकर स्पर्शने देवताओंके हृदय भी विचलित कर दिए। ब्रह्माके व्रतको भंग कर दिया, विष्णुको अपना दास बना लिया और महर्षियोंकी तपस्याको नष्ट कर डाला उसका प्रभाव मेरे जैसे साधारण व्यक्तिपर नहीं पड़ता। मेरे पुंस्त्वहीन होनेके लिए इससे अधिक प्रमाण और क्या चाहिए।"

सुदर्शनकी बातसे कपिला अत्यंत निराश हो चुकी थी। वह पश्चात्तापके स्वरमें बोली—"ओह! तब मैंने व्यर्थ ही अपने हृदयको कलंकित किया।"

सुदर्शन यह सुननेके लिए वहां खड़ा नहीं रहा। वह शीघ्र ही कपिलाके घरसे बाहिर निकल गया।

× × ×

वसंत ऋतु आई। वसंतोत्सव मनानेके लिए नगर निवासी उन्मत्त होकर उपवनकी ओर जाने लगे। सुदर्शन भी अपनी पत्नी और पुत्रोंके साथ वसंतोत्सव मनाने गया था। महारानी अभया भी यह उत्सव मनाने गई थी। उनके साथ विप्र पत्नी कपिला और उसकी अन्य सखियां भी थीं।

महारानी अभयाने सुदर्शनके सुन्दर पुत्रोंको देख कर अपनी दासीसे पूछा—"चपला, क्या तू बतला सकेगी यह सरल और पुष्ट बालक किसके हैं।"

चपलाने कहा—महारानीजी! यह सुन्दर बालक नगरके प्रसिद्ध धनिक श्रेष्ठी सुदर्शनके हैं।

सुदर्शनके यह बालक हैं, सुनकर कपिला एकदम सिहर उठी, अनायास उसके मुंहसे निकल गया—"सुदर्शनके बालक! सुदर्शन तो पुरुषत्व हीन है।"

रानीने कपिलाके हृदयकी यह सिहरन देखी, उसके कहे शब्दोंको सुना। यह सब उसे अत्यंत रहस्यजनक प्रतीत हुआ। उसने कपिलासे यह सब जानना चाहा।

कपिला उत्तेजनामें आकर कह तो चुकी थी परन्तु उसे अपनी बातपर बड़ी लज्जा आई, वह कुछ समयको मौन रह गई। फिर बोली—"महारानीजी कुछ नहीं, मैंने सुदर्शनके संबंधमें किसीसे यह सुना था।"

उसके बोलनेके ढंग और लज्जाशील मुंहको देखकर रानीको उसके कहनेपर संदेह होगया, वह बोली—"नहीं कपिला, तू अपने हृदयकी स्पष्ट बातको मुझसे छुपा रही है, तू सत्य कह, तूने यह कैसे जाना है?"

कपिला अपने हृदयकी बातको छुपा नहीं सकी, उसने अपने ऊपर बीती हुई सारी घटना रानीको कह सुनाई।

कपिलाकी कहानी सुनकर रानीके हृदयमें एक विचित्र आकर्षण हुआ। करुणा और हास्यकी धाराएं तीव्र गतिसे बहने लगी। अपने हृदयमें सब भावनाएं लेकर वह वसंतोत्सवसे लौटी।

\+ \+ \+

रानी अभयाका हृदय आज अत्यंत चंचल हो उठा था। कितने ही प्रयत्नों द्वारा दबाये जानेपर भी अब उसके हृदयकी चंचलता नहीं रुक सकी तब उसने अपने हृदयकी हलचलको अपनी धाय पंडिता पर प्रकट किया।

सारा संसार स्वर्णमय बन गया था, उसने स्नान किया और देव-मंदिरको चल दी।

द्वार प्रवेश करते ही उसे महात्माके दर्शन हुए। उसने भक्ति और श्रद्धासे उन्हें प्रणाम किया। महात्माने आशीर्वाद दिया : तू सुखी हो। अरे! यह क्या? यशोभद्राके नेत्रोंसे अश्रुधारा बह चली। महात्मा विचलित हो उठे। बोले—पगली, तू रोती है?

महात्माजी! कहते हुए उसका हृदय करुण हो उठा। वह बोली—योगिराज! आप सब जानते हैं, कहिए। कब मैं पुत्रवती होऊंगी? मैं अभागिनी क्या कभी मां शब्द सुन सकूंगी? बतलाइए क्या मुझे पुत्र-सुख मिलेगा? महात्मा बोले—" बहिन! शान्त हो। संसारमें सबको सब कुछ मिलता है, तुझे भी मिलेगा। तेरे पुत्र होगा—ऐसा पुत्र जो अपने उन्नत आदर्शसे संसारको चकित कर देगा, जिसकी यशःध्वनिसे संसार गूंज उठेगा, उन्नत मस्तक जिसके चरणोंपर लोटेंगे जिसकी चरित-चन्द्रिका भूतलपर अपनी उज्ज्वल किरणें फैलायेंगी ऐसा पुत्र तेरे होगा। ' किन्तु '...महात्मा मौन होगए।

यह सुनकर पुत्रकी उत्कट इच्छा रखनेवाली यशोभद्राका हृदय हर्षसे फूल उठा—पर महात्माके अंतिम शब्द 'किन्तु', को वह समझ न सकी। वह आतुर होकर बोली—महात्मा! कहिए इस "किन्तु"का क्या मतलब? इसने मेरे हर्षित हृदयको बेचैन कर दिया है। इसने उस अनंत आनंदके दरवाजेको बंद कर दिया है जिसमें मैं शीघ्र प्रवेश करना चाहती थी। इस " किन्तु " की पहेलीको शीघ्र हल कीजिए।

महात्मा कुछ सोचकर बोले—बहिन! तुझे पुत्र-रत्न तो प्राप्त होगा

किन्तु पुत्र प्राप्तिके साथ ही तुझे पति-वियोग होगा। पुत्र जन्मके समय ही तेरे स्वामी इस संसारकी मायाका त्याग कर तपस्वी बन जायेंगे!

यशोभद्राने सुना—देखा, महात्मा ध्यानमग्न होगए हैं। वह उठी, देव-दर्शन किया और हर्ष विषादके हिंडोलेमें झूलती हुई अपने घर चल दी।

(२)

कालकी चाल नियमित है। संसारके प्राणी जो नहीं बनना चाहते उसे समय बना देता है। जो देखना नहीं चाहते है समय अपनी परिवर्तन शक्तिमे वही दिखला देता है। समयकी गतिने यशोभद्राके लिए वह अवसर ला दिया जिसके लिए वह अत्यन्त उत्सुक थी।

वह अब गर्भवती थी। अपने हर्षके हिंडोलेको वह हौले हौले झुला रही थी, उसका हृदय किसी अभूतपूर्व आशाके प्रकाशसे जगमगा रहा था। नगरके उद्यानमें कुछ तपस्वी महात्मा पधारे थे। सुरेन्द्रदत्त उनके दर्शनके लाभको संवरण नहीं कर सके। वे शीघ्र ही उद्यानमें पहुंच गए। महात्माओंका उपदेश चल रहा था; संसारकी नश्वरताका नग्न दिग्दर्शन होरहा था, उपदेश प्रभावशाली था। सुरेन्द्रदत्तके हृदय पर इस उपदेशने इतना गहरा रंग जमाया कि वे उसीमें रंग गए, घरकी सुधि गई। पत्नीके प्रेमका तूफान भंग हुआ और वैभवका नशा उतर गया। अधिक सोचनेके लिए उनके पास समय नहीं था। वे उसी समय तपस्वी बन गए।

इधर, उसी समय यशोभद्राने एक सुन्दर बालकको जन्म दिया। उसके प्रकाशसे सारा घर जगमगा उठा। स्वजन हितैषियोंके समूहसे

था व्याप्त होगया, मंगल गान होनेलगा और याचकोंको अभीष्ट वस्तुयें मिलने लगीं। कैसा आश्चर्य जनक प्रसंग था यह। इधर पुत्र जन्म उधर पति वियोग! संसार कितना रहस्य मय है?

सुरेन्द्रदत्तने पुत्र जन्मका संवाद सुना, पर वे तो उस दुनियांसे बहुत दूर चले गये थे। इतनी दूर कि जहांसे लौटना ही अब असंभव था।

यशोभद्राने भी सुना, पति तपस्वी बन गए हैं। उसे कुछ लगा पर वह तो पुत्र—जन्मके हर्षमें इतनी अधिक मग्न थी कि उसे उस समय कुछ अनुभव ही नहीं हुआ।

(३)

शून्यताके अवगुंठनमें छिपा हुआ सुरेन्द्रदत्तका प्रांगण आज बालकोंकी चहल पहलसे जाग उठा था, बालकोंके समूहसे घिरे हुए सुकुमालको देखकर माताका हृदय उस अकल्पित सुखका अनुभव कर रहा था, जो उसे जीवनमें कभी नहीं मिला था। सुकुमालका शरीर चमकते हुए सोनेकी तरह था। कीमती वस्त्रोंसे सजकर जब वह बाल्य चालसे चलता था, तब दर्शकोंके नेत्र उसकी ओर बरबस खिंच जाते थे। बालकके सरल और अकृत्रिम स्नेह—सुधाको पीकर मां अपने हृदयको तृप्त करने लगी।

शंकित हृदय कहीं विश्राम नहीं पाता। कुछ समयसे यशोभद्राका हृदय अपने पुत्रकी ओरसे किसी अज्ञात भयसे भरा रहता है। बढ़ता हुआ सुकुमाल जबसे अपनी लीलाओंसे उसे प्रसन्न करने लगा तभीसे उसके हृदयकी गुप्त आशंका और भी अधिक बढ़ने

(६)

महात्माका चातुर्मास समाप्त हो गया, आज उनके उज्जयिनीसे विहार करनेका दिन था। सवेरे चार बजेका समय था। वे पाठ कर रहे थे उनका स्वर आज कुछ ऊंचा हो गया था देवताओंके वैभवका वर्णन था। एक आवाज सुकुमालके कानों तक पहुंची। वह पूर्व स्मृतिके तार झनझना उठे। किसीने उसे जगा दिया। वह बोल उठा—"अरे! मैं आज यह क्या सुन रहा हूं।" स्वर कुछ और ऊंचा होगया। पूर्वजन्मकी उसकी स्मृति जागृत हो उठी। यह तो मेरे ही पूर्व वैभव वर्णन है। अरे मैं क्या था और आज क्या हूं! वे विलासके दिन किसतरह चले गये। वे सुखद स्मृतियां आज मेरे संतापट पर कुछ मीठी मीठी थपकियां दे रही हैं अब क्या उसी तरह यह भी नष्ट होजायगा। जऊं उनसे ही मालूम करूं।"

वह उठा—रात्रि कुछ अवशेष थी। शून्यगतिसे ही महलसे नीचे उतरा और सीधे महात्माके पास चला गया। आज उसके लिये कोई प्रतिबंध नहीं था। यदि होता भी तो वह उसे कुचल डालता। उसकी मनोभावना आज अत्यंत प्रबल हो उठी थी। जाकर महात्माको प्रणाम किया। बोला—"महात्मा! हां आगे और कहिये मेरा वह साम्राज्य तो गया—यह साम्राज्य मेरा अब कबतक स्थिर रहेगा?" महात्मा बोले—"पुत्र तू ठीक समयपर आ गया, बस अब थोड़ा ही समय शेष है।" मुझे हर्ष है। तू आ तो गया। तेरी उम्रके बस अब तीन ही दिन बाकी हैं। तुझे जो कुछ करना हो इतने समयमें ही अपना सब कुछ कर डाल।

सुकुमालने सुना--परदा उलट गया था। अब उसे कुछ दूसरा ही दृश्य दिख रहा था। खुल गये थे उसके हृदय कपाट। उसे कुछ कुछ अपना बोध होने लगा। साधु फिर बोले—मानवकी महत्ता केवल विश्व वैभव एकत्रित करनेमें नहीं है। अनन्त वैभवका स्वामी बनकर ही वह सब कुछ नहीं बन जाता। वास्तविक महत्ता तो त्यागमें है—निर्मम होकर सर्वस्व दानमें ही जीवनका रहस्य है। स्वामी तो प्रत्येक व्यक्ति बन सकता है। ज्ञान शून्य, हिंसक और व्यसन-व्यस्त व्यक्ति भी वैभवके सर्वोच्च शिखर पर आसीन हो सकते हैं। किन्तु त्यागी विरले ही होते हैं। वे सर्वस्व त्याग कर सब कुछ देकर भी उस अकालनिक सुखका अनुभव करते हैं जिसका अंश भी रागी प्राप्त नहीं कर सकता।

सुकुमाल आगे और अधिक नहीं सुन सका। बोला—महात्मन! अधिक मत कहिये मैं अब सुन न सकूंगा मैं लज्जासे मरा जाता हूं। मैंने आजतक अपनेको नहीं समझा। ओह! कितना जीवन मेरा व्यर्थ गया! अब नहीं खोना चाहता। एक एक पल मैं अपने उस विषयी जीवनके प्रायश्चितमें लगाऊंगा। मुझे आप दीक्षा दीजिये। अभी-इसी समय-मुझे आप अपने चरणोंमें डाल लीजिये।

साधुने दीक्षा दी। सुकुमालका सुकुमार हृदय आज कठोर पत्थर बन गया।

लड़ाईके भयंकर मैदानमें शत्रुओंको विजित कर देना वीरता अवश्य कहलायगी। भयंकर गर्जना और चमकते हुए नेत्रोंसे मनुष्योंको

भयभीत कर देने वाले सिंहके पंजोंसे खेलना आश्चर्यजनक अवश्य है। अरुण नेत्रोंवाले काले नागको नचानेमें भी बहादुरी है किन्तु यह सब भोले संसारको बहकानेके साधन हैं। कोई भी व्यक्ति इनसे अंत संतोष प्राप्त नहीं कर सकता। वह वीरता और चातुर्य स्थायी विजय प्राप्त नहीं कराता। बड़े बड़े महादुर्गोंपर विजय प्राप्त करनेवाले बादशाह भी अंतमें इस दुनियामे विजित होकर गये हैं, हां! अपने आप पर विजय पाना वास्तविक वीरता है। प्रलोभनोंकी घुड़दौड़में आगे बढ़नेवाले मन पर वासनाकी रंगभूमिमें नृत्य करनेवाली इन्द्रियों पर काबू पाने उन्हें अपना गुलाम बनानेमें ही स्वामित्वका महत्व है।

साधु, तपस्वी, त्यागी शब्द जितने ही महत्वपूर्ण हैं उन्हें प्राप्त करनेके लिये उतनी ही साधना, तपस्या और त्यागकी आवश्यकता है। केवल मात्र नग्न रहने अथवा गेरुए वस्त्र धारण कर लेनेसे ही वह पद प्राप्त नहीं हो जाता है। जब तक वह अपनी कामनाओं और लालसाओं पर विजय प्राप्त नहीं कर लेता, उसकी इच्छाएं मर नहीं जातीं तबतक तो केवल ढोंगमात्र ही है। वे व्यक्ति जो अपने गार्हस्थ जीवनको ही सफल नहीं बना सकें, साधनोंके प्राप्त होते भी जो अपनेको अग्रसर नहीं कर सके और गृहस्थ जीवनकी कक्षामें अनुत्तीर्ण होकर यश, सम्मान और इच्छाओंकी लालसाओंसे आकर्षित होकर अपनी अकर्मण्यताको ढकनेके लिये तपस्वी या महात्माका स्वांग रचते हैं और भोले संसारको ठगनेके लिये तरह तरहके माया जाल रचते हैं वे तपस्वी नहीं आत्म वंचक हैं। वे अपनेको ईश्वरका प्रतिनिधि बतलानेवाले तीव्र प्रवंचणाके पात्र हैं, आडंबरकी ओटमें अपने

छिद्रको ढकनेवाले उन व्यक्तियोंसे शांति और साधना सहस्रों कोस दूर भागती है। उनका अस्तित्व न रहना ही श्रेयस्कर है।

सुकुमाल तपस्वी बना नहीं था। अंतरकी उत्कट आत्म साधनाने उसे तपस्वी बना दिया था। वह संसारका भूखा वैरागी नहीं था वह तो तृप्त तपस्वी था। उसकी आत्मा तपस्वी बननेके प्रथम ही अपने कर्त्तव्यको पहचान चुकी थी। वह जान गया था संसारके नग्न चित्रको।

रत्न दीपकोंके प्रकाशके अतिरिक्त दीप प्रकाशमें अश्रुपूर्ण हो जानेवाले अपने नेत्रोंकी निर्बलताको वह समझता था कमल वासित सुगंधित चांवलोंके अतिरिक्त साधारण तन्दुलके स्वादको सहन न कर सकनेवाली अपनी जिह्वाकी तीव्रताका उसे अनुभव था। मखमली गद्दोंपर चलनेके अतिरिक्त पृथ्वीपर न चलनेवाले पैरोंकी सुकुमारताका उसे ज्ञान था। उसे अपने शरीरके अणु अणुका पता था। वह एक स्टेज पर उनको ला चुका था, अब उसे उन्हें दूसरी ओर ले जाना था। अब तो उसे उन्हींसे दूसरा दृश्य अंकित कराना था। अभी तो वह उनकी गुलामी कर चुका था। उनके इशारे पर नाच चुका था, अब सुकुमालके इशारे पर उनके नाचनेकी बारी थी। बहुत मजबूत कठोर उसे बनना था। वह बना। एक क्षणमें ही दृश्य परिवर्तित हो गया। पलक मारते ही उसने अपने स्वामित्वको पहचान लिया, मानो यह कोई जादू था कड़ाकेकी दोपहरीका समय, पाषाण कणमय पृथ्वी, उसके पैरोंसे रक्तकी धारा बहने लगी किन्तु उसे तो

पथ पर छोड़ दूंगा, अशांत और दुखी जनताका मैं पथ प्रदर्शन करूंगा, उसके लिए मुझे अपना सर्वस्व त्याग करना होगा। लोक-कल्याणके लिए मैं सब कुछ करूंगा, तपस्वी बनकर मैं अपनी आत्माको पूर्ण विकसित करूंगा और पवित्र आत्म-ध्वनिको संसारभरमें फैलाऊंगा। यह विचार आते ही वे बालब्रह्मचारी महावीर तपस्वी बननेके लिए तैयार होगए।

त्रिशला माताको अपने पुत्रके विचार ज्ञात हुए। पुत्र वियोगके अथाह दुखसे उनका हृदय विकल होगया। वह इस दुखको सह न सकी। रोते हृदयसे बोली—"पुत्र! मैं अबतक पुत्रवधूके सुखोंसे वंचित रहकर भी तुम्हारा मुंह देखकर संतोष कर रही थी लेकिन अब तुम भी मुझे त्यागकर जा रहे हो अब मेरे जीवनका क्या सहारा रहेगा?

पुत्र! इतने बड़े राज्य वैभवका त्याग तुम क्यों कर रहे हो? क्या गृहस्थजीवनमें रहकर तुम लोक-कल्याण नहीं कर सकते? महलोंमें रहनेवाला तुम्हारा यह शरीर तपस्याके कठिन कष्टको कैसे सहन कर सकेगा? मैं प्रार्थना करती हूं कि जननीके पवित्र प्रेमको तुम इसतरह मत ठुकराओ गृहस्थ जीवनमें रहकर ही संसारका कल्याण करो।"

जननीको सान्त्वना देते हुए महावीर बोले—"जननी! इस उत्सवके समयमें आज यह खेद कैसा? तेरा पुत्र संसारका उद्धार करने जारहा है, आत्मकल्याणके प्रशस्त पथका पथिक बन रहा है, यह जानकर तो तेरा हृदय गौरवसे भर जाना चाहिए।

गौरवमयी जननी! गृहस्थ जीवनके बन्धन अब मेरी आत्मा स्वीकार नहीं करती, अब तो यह संसारमें आत्मस्वातंत्र्य और समताका

साम्राज्य स्थापित करनेके लिये तड़फड़ा उठी है, तुम उसे इस जीर्ण बंधनमें बद्ध रखनेका हठ मत करो, अब उसे स्वछंद विचरनेकी ही अनुमति दो।

वर्द्धमान महावीरने अपने पवित्र उपदेश द्वारा जननी और जनकके मोहजालको छिन्न भिन्न कर दिया। उनसे आज्ञा लेकर वे तपश्चरणके लिए वनकी ओर चल दिए।

× × ×

अपने शरीरको महावीरने तपश्चरणकी ज्वालामें डाल दिया था, तीव्र आंचसे कर्ममल दूर होकर आत्मा पवित्र बनाने लगा था, तपस्याकी आंचमें एक और आंच लगी।

वे अनेक स्थानोंपर भ्रमण करते हुए एक दिन उज्जयिनीके स्मशानमें ध्यानस्थ थे, स्थाणु नामक रुद्रने उन्हें देखा। पूर्व जन्मके संस्कारोंके कारण उसने उनकी शांति भंग करनेका कुत्सित प्रयत्न किया। उन पर अनेक असहनीय उपसर्ग किए लेकिन महावीर किसी तरह भी तपश्चरणसे चलित नहीं हुए। अत्याचारीकी शक्तिका अन्त होगया था, इस उपसर्गने महावीरके तपस्वी हृदयको और भी दृढ़ बना दिया।

महावीरने तेरह वर्ष तक कठिन साधना की। अन्तमें उन्हें इस आत्म साधनाका फल कैवल्यके रूपमें मिला-उन्होंने सर्वज्ञता प्राप्त की।

महावीर वर्द्धमान महान् आत्म संदेशवाहक थे। सर्वज्ञता प्राप्त करते ही विश्वकल्याणके लिए उनका उपदेश प्रारम्भ हुआ। विशाल समवस्थल निर्माण किया गया था। उनका उपदेश सुननेके लिए जनसमूह एकत्रित होने लगा।

भारतमें विरोधकी जड़ जमानेवाली विषमताकी बेलिपर उन्होंने प्रथम प्रहार किया। क्रियाकांडके पालनेमें पली हुई अंध परम्परा और अहंमन्यताको उन्होंने समूल नष्ट कर दिया। केवल जाति अधिकारोंके बलपर स्वयंको उच्च और अन्यको नीच समझनेवाली कुत्सित भावनाके भयंकर तूफानको शांत करनेमें उन्होंने अपनी पूर्ण शक्तिका प्रयोग किया. मानव हृदयमें कुंठित पड़ी आत्मोत्थानकी भावनाको बल दिया और गिरे हुए मनोबलको जागृत, विकसित और प्रोत्साहित किया।

अपनेको तुच्छ और हीन समझनेवाले, सामाजिक और धार्मिक साधनोंसे ठुकराए हुए मानवोंके मनमें उन्होंने तीक्ष्ण आत्म सम्मानकी प्रकाश किरणोंको प्रविष्ट कराया।

ठुकराए हुए दीन हीन मानवोंकी आत्म-शक्ति इतनी कुंठित हो चुकी थी कि वे समझ नहीं सकते थे कि हम मानव हैं, हमें भी कोई अधिकार प्राप्त हैं।

मदांध धर्मिक ठेकेदारोंने मानव शक्तिको बेकार कर दिया था। वे सोच ही नहीं सकते थे कि हमें भी इस गाढ़ अंधकारमें कभी प्रकाशकी किरणोंका प्रदर्शन प्राप्त हो सकता है। हम इस भयंकर जड़ताकी काल कोठरीसे कभी निकल भी सकते हैं।

महावीरको जड़त्व और हीनत्वकी चिरकालसे जड़ जमानेवाली उस भावनाको नष्ट करनेमें काफी शक्ति और आत्मबलका प्रयोग करना पड़ा। विषमताकी लहरें प्रचंड थीं। हिंसा और दंभका अकांड तांडव था, किन्तु महावीरके हृदयमें एक चोट थी वे इस विषमतासे तिलमिला उठे थे। मानव मात्रके कल्याणकी तीव्र भावनाने उन्हें दृढ़

निश्चयी बना दिया था। मदांध धर्माधिकारियोंको उन्हें कड़ा मुकाबला करना पड़ा किन्तु वे अपनी मनोभावनाओंके प्रचारमें उत्तीर्ण हुए। मानवताके संदेशको मानवोंके हृदय तक पहुंचानेमें वह सफल हुए। उनकी यह सफलता साम्यवादका शंखनाद था, मनुष्यकी विजय थी और विशेष महत्ताका दर्शन करानेवाली स्वर्ण किरण थी।

मानवोंने उस स्वर्ण प्रकाशमें अपनी शक्तिको विकसित करनेवाले स्वर्ण पथको देखा। किन्तु उनके पद उसपर चलनेमें शंकित थे उन्हें उसपर चलनेके लिए उन्होने प्रेरित किया, परिचालित किया और इच्छित स्थानपर चलनेकी शक्ति प्रदान की। वे उस पथके पथिक बने जिसपर चलनेकी उन्हें चिरकालसे लालसा थी। समताकी सरिताके वेगमें वैषम्यके किनारे ढह गए और एक विशाल तट बन गया, उन्हें साम्यवादके दर्शन हुए।

साम्यवादका रहस्य उन्होंने जनताको समझाया

धर्म और सामाजिक क्रियाओंमें किसी भी जातिके मानवको समानाधिकार है। निर्धनता, शूद्रता अथवा स्त्रीत्वकी शृंखलाएं धार्मिक तथा आत्मसाधनमें किसी प्रकार बाधक नहीं होसकती। जातिगत अथवा व्यक्तिगत अधिकारोंका धार्मिक क्षेत्रमें कोई अधिकार नहीं। धर्म प्राणीमात्रके कल्याणके लिए है। जितनी आवश्यकता धर्मकी एक धनिकके लिए है उतनी ही निर्धनके लिए है। धर्मको लेकर प्रत्येक प्राणी अपना आत्म कल्याण करनेके लिए स्वतंत्र है। यह उनका दिव्य संदेश था।

महावीरके समवसृतमें प्रत्येक जातिके स्त्री-पुरुषको धर्मोपदेश

उनके इन सिद्धांतोंने विश्वमें अमरत्वका साम्राज्य स्थापित किया।

भगवान महावीरने साम्यभाव और विश्वप्रेमका शांतिपूर्ण साम्राज्य लानेके लिए महान् त्यागका अनुष्ठान किया। उन्होंने अपने जीवनके ३० वर्ष इस महान उपदेशमें खपा दिए।

× × ×

अपनी आयुके अन्त समयमें वे विहार करते हुए पावापुरके उद्यानमें आए। वह कार्तिक कृष्णा अमावस्याका प्रभातकाल था। रात्रिकी कालिमा क्षीण होनेको थी। इसी पवित्र समयमें उन्होंने इस नश्वर संसारका त्याग कर निर्वाण प्राप्त किया। देवताओं और मनुष्योंके समूहने एकत्रित होकर उनका निर्वाणोत्सव मनाया, उनके गुणोंका कीर्तन किया और उनकी चरणरजको अपने मस्तकपर चढ़ाया।

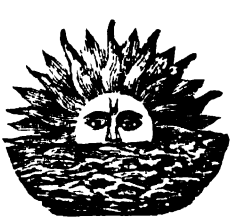

[१८]

अद्धालु श्रेणिक (बिंबसार)

(अनन्य श्रद्धालु महापुरुष)

(१)

राजा बिंबसार शिकार खेलकर वनसे लौटे थे। उनका मन आज अत्यन्त खिन्न हो रहा था। अनेक प्रयत्न करने पर भी आज उनके हाथ कोई शिकार नहीं लगा था। लौटते समय उन्होंने जैन साधुको खड़े देखा। अब वे अपने क्रोधको काबूमें नहीं रख सके। आज सबेरे शिकारको जाते समय भी उन्होंने इन्हीं साधुको देखा था। उन्होंने सोचा—इस नंगे साधुके दिखाई दे जानेके कारण ही आज मुझे शिकार नहीं मिला। वे बहुत झुंझलाए हुए थे। जंगलसे लौटते समय उसी स्थान पर साधुको निश्चल खड़े देखकर उनके हृदयमें बदला लेनेकी तीव्र इच्छा जाग्रत हो उठी।

राजा बिंबसारके अधिक क्रोधित होनेकी एक बात और थी। कल ही उनकी रानी चेलनाने बौद्ध भिक्षुओंका परीक्षण किया था। परीक्षणमें वे बुरी तरहसे पराजित और लज्जित हुए थे। उस परीक्षणसे राजा बिंबसारका जैन-द्वेषी हृदय और भी भड़क उठा था। वे जैन साधु-मात्रसे अत्यंत रुष्ट होगए थे और बौद्ध साधुओंके पराभवका बदला वह किसी तरह लेना चाहते थे।

प्रसंग यह था—राजगृहमें बौद्ध भिक्षुकोंका एक विशाल संघ आया था। संघ आगमनका समाचार बिंबसारने सुना। वे अत्यंत प्रसन्न होकर रानी चेलनासे बौद्ध भिक्षुकोंकी प्रशंसा करने लगे। वे बोले—"प्रिये! तू नहीं जानती कि बौद्ध भिक्षु ज्ञानकी किस उत्कृष्टताको प्राप्त कर लेते हैं। संसारका प्रत्येक पदार्थ उनके ज्ञानमें झलकता है। वे परम पवित्र हैं। वे ध्यानमें इतने निमग्न रहते हैं कि यदि उनसे कोई कुछ प्रश्न करना चाहता है तो उसका उत्तर भी उसे बड़ी कठिनतासे मिलता है। ध्यानसे वे अपनी आत्माको साक्षात् मोक्षमें लेजते हैं। वे वास्तविक तत्वोंके उपदेशक होते हैं।

चेलनाने बौद्ध भिक्षुकोंकी यह प्रशंसा सुनी। उन्होंने नम्रतासे उत्तर दिया—"आर्य! अदि आपके गुरु इस तरह पवित्र और ध्यानी हैं तब उनका दर्शन मुझे अवश्य कराइए। ऐसे पवित्र महात्माओंका दर्शन करके मैं अपनेको कृतार्थ समझूंगी। इतना ही नहीं, यदि मेरे परीक्षणकी कसौटी पर इनका सच ज्ञान और चारित्र खरा निकला तो मैं आपसे कहती हूं, मैं भी उनकी उपासिका बन जाऊंगी। मैं पवित्रताकी उपासिका हूं, मुझे वह कहीं भी मिले। यह हठ मुझे नहीं है कि वह जैन साधु ही हों, सत्य और पवित्र आत्माके दर्शन जहां भी मिलें वहां मैं अपना मस्तक झुकानेको तैयार हूं, लेकिन बिना परीक्षणके यह कुछ नहीं होसकेगा। मैं आशा करती हूं कि आप मुझे परीक्षणका अवसर अवश्य देंगे।"

रानीके सरल हृदयसे निकली बातोंका राजा बिंबसारके हृदयपर गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने बौद्ध साधुओंके ध्यानके लिए एक विशाल

मंडप तैयार कराया। बौद्ध साधु उस मंडपमें ध्यानस्थ होगए। उनकी दृष्टि बंद थी, सांसको रोककर काष्टके पुतलेकी तरह समाधिमें मग्न थे।

राजा बिंबसार रानीके साथ वहां पहुंचे। रानी चेलनाने उनके परीक्षणके लिए उनसे अनेक प्रश्न किये लेकिन भिक्षुओंने उन्हें सुनकर भी उनका कोई उत्तर नहीं दिया। पासमें बैठा हुआ एक ब्रह्मचारी यह सब देख रहा था। वह रानीसे बोला-माताजी! यह सभी भिक्षुक इस समय समाधिमें मग्न हैं। सभी साधुओंकी आत्म शिवालयमें विराजमान हैं। देह सहित भी इस समय ये सिद्ध हैं इसलिए आपको इनसे कोई भी उत्तर नहीं मिलेगा।"

ब्रह्मचारीके इस उत्तरसे चेलनाको कोई संतोष नहीं हुआ। लेकिन वह तो पूर्ण परीक्षण चाहती थी। वह जानना चाहती थी कि भिक्षुओंकी आत्मा वास्तवमें सिद्धालयमें है, या यह सब ढोंग है। इस परीक्षणका उसके पास एक ही उपाय था, उसने मंडपके चारों ओर अग्नि लगवा दी और उनका दृश्य देखनेके लिए कुछ समयतक तो वहां खड़ी रही, फिर कुछ सोच समझ कर अपने राजमहलको चलदी।

अग्नि चारों ओर सुलग उठी। जब तक अग्निकी ज्वाला प्रचंड नहीं हुई वे बौद्ध भिक्षुक ध्यानस्थ बैठे रहे, लेकिन अग्निने अपना प्रचंड रूप धारण किया, तो वे अपनेको एक क्षणके लिए ध्यानमें स्थिर नहीं रख सके। जिस ओर उन्हें भागनेको दिशा मिली वे उसी ओर भागे। कुछ क्षणों वहांका वातावरण बहुत ही अशांत होगया, अब वह स्थान साधुओंसे बिलकुल रिक्त था।

एक क्रोधित भिक्षुने जाकर यह सब बात राजा बिंबसारको सुनाई तो राजाके क्रोधका कोई ठिकाना नहीं था, उन्होंने रानीको

उसी समय बुलाया । कांपते हुए हृदयसे वे बोले—"रानी ! तुम्हारा यह कृत्य सहन करनेयोग्य नहीं, मैं नहीं समझता था कि मतद्वेषमें तुम इतनी अंधी हो जाओगी । यदि तुम्हें बौद्ध भिक्षुकों पर श्रद्धा नहीं थी तो तुम उनकी भक्ति भले ही न करतीं, लेकिन उनके ऊपर ऐसा प्राणान्तक उपसर्ग तो तुम्हें नहीं करना चाहिए था । क्या तेरा जैन धर्म इसी तरह भिक्षुओंके निर्दयतासे प्राण घातकी शिक्षा देता है ? तेरे धर्मरक्षणकी अंतिम कसौटी क्या बेबस प्राणियोंका प्राणघात ही है ?

कुपित नरेशको शांत करती हुई चेलना बोली—"नरेश्वर ! मेरा लक्ष्य उन्हें जरासी तकलीफ देनेका नहीं था और न मेरे द्वारा उन बौद्ध भिक्षुकोंको थोड़ासा भी कष्ट पहुंचा है । मैं तो ब्रह्मचारीके उत्तरसे ही यह समझ चुकी थी कि ये बौद्ध भिक्षुक निरे दंभी हैं, ये अग्निकी ज्वालाको सह नहीं सकेंगे और भाग खड़े होंगे । मैं तो आपको इनके मौन नाटकका एक दृश्य ही दिखलाना चाहती थी, इसे आप स्वयं देख लीजिए ।"

वे साधु समाधिस्थ नहीं थे, यदि उनकी आत्मा समाधिस्थ होती तो वे शरीरको जल जाने देते । शरीरके जलनेसे उनकी सिद्धालयमें विराजमान आत्माको कुछ भी कष्ट नहीं होना चाहिए था । वह समाधि ही कैसी जिसमें शरीरके नष्ट होनेका भय रहे, समाधिस्थ तो अपने शरीरके मोहको पहले ही जला बैठता है, फिर उसके जलने और मरनेसे उसे क्या भय हो सकता है ?

महाराज ! वास्तवमें आपके वे भिक्षु समाधिस्थ नहीं थे । उन्होंने मेरे प्रश्नोंका उत्तर न दे सकनेके कारण मौनका दंभ रचा था,

उनका दंभ अब प्रकट होगया, आप अपने बौद्ध भिक्षुओंके इस दंभको स्पष्ट देखिए, क्या यह सब देखते हुए भी आपकी उनपर श्रद्धा रहेगी ?

रानीके युक्तियुक्त वचन सुनकर महाराज निरुत्तर थे । लेकिन अपने गुरुओंके इस परामवसे उनके हृदयको गहरी चोट लगी। ध्यानस्थ जैन साधुओंको देखकर आज उनकी वह चोट गहरी हो गई थी, उन्होंने साधुके ध्यानका परीक्षण चाहा । उन्होंने किसी तरहका विचार किए बिना ही अपने शिकारी कुत्ते उन पर छोड़ दिए ।

साधु परम ध्यानी थे । उनके ऊपर क्या उपसर्ग किया जारहा है, इसका उन्हें ध्यान भी नहीं था । उनकी मुद्रा उसी तरह शांत और निर्विकार थी । उनका हृदय उसी तरह आत्मध्यानमें गोते खा रहा था । उनकी मौन शांतिका उन शिकारी कुत्तों पर भी प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा । हिंसकसे हिंसक पशु भी आज उनकी इस शांतिसे प्रभावित हो सकता था । कुत्ते उनके सामने आकर मंत्र कीलित सर्पकी तरह शान्त खड़े रह गए ।

बिंबसारकी आज्ञाके विपरीत कार्य हुआ । वे कुत्ते दौड़ा कर साधुकी समाधि भंग करना चाहते थे, लेकिन साधुकी समाधिने कुत्तोंको भी समाधिस्थ बना दिया । वे यह दृश्य देखकर दंग रह गए, साथ ही उन्हें साधुके इस प्रभाव पर ईर्षा भी हुई । वे सोचने लगे— यह साधु अवश्य ही कोई मंत्र जानता है जिसके बलसे इसने मेरे बलवान हिंसक कुत्तोंको अपने वशमें कर लिया है, लेकिन मैं इसके मंत्र बलको अभी मिट्टीमें मिलाये देता हूं । मैं अभी इस दुष्ट जादूगरका सर धड़से उड़ाए देता हूं फिर देखूंगा कि इसका जादू कहां रहता

है । वे ईर्षाके सामने कर्तव्यको भूल गए थे विवेकको उन्होंने दुका दिया था एक न्यायशील राजा होकर भी उन्होंने अन्याय और अत्याचारके सामने सिर झुका लिया था कृपाण लेकर वे आगे बढ़े, इसी समय एक भयंकर काला सप उनके सामने फुंफकारता हुआ दौड़ा । उनके मस्तक पर पड़नेवाली कृपाण सर्पके गलेपर पड़ी इस अचानक आक्रमणने उनके हृदयको बदल दिया था, बदलेकी भावना नष्ट नहीं हुई थी । लेकिन उसमें कुछ कमी अवश्य आगई थी, साधुके गलेमें मरा हुआ सर्प डालकर ही उन्होंने अपने बदलेकी भावना शांत कर ली ।

साधु यशोधके गलेमें सर्प डालकर वे प्रसन्न थे । सोच रहे थे, साधु अपने गलेमें सांपको निकाल कर फेंक देगा. लेकिन अब इस समय इतना बदला ही काफी है, संध्याका समय भी हो चुका था, वे संतोषकी सांस लेते हुए अपने महलको चल दिए ।

(२)

चित्तमें जो कुछ कर आये थे उसे वे गुप्त रखना चाहते थे, लेकिन हृदय उनके कृत्यको अपने अंदर रखनेको तैयार नहीं था । वह उसे निकाल बाहर फेंकना चाहता था, तीन दिन तक तो उन्होंने अपने इस कृत्यको मनीसे अपकट रक्खा । लेकिन चौथे दिन जब रात्रिको वे राज्य महलमें अपनी शय्या पर लेटे हुए थे उनका साधुके साथ किया हुआ दुष्कृत्य उबल पड़ा । वह मनों पर प्रकट होकर ही रहना चाहता था । राजा लाचार थे, उन्होंने साधुके ऊपर सर्प डालनेकी कहानी कह सुनाई ।

अंतमें धरातलमें जाकर विराम लेती है उसी प्रकार निश्चय अथवा श्रद्धा रहित मनुष्य संसारकी अनेक प्रकारकी विडम्बनाओंका अनुभव करता बार बार मार्ग परिवर्तन करता, अंतमें निराश बनकर अधःपातकी शरण लेता है। श्रद्धा यह एक सुमेरु पर्वत सदृश अडिग निश्चय है। देवता भी जिसे चलित नहीं कर सकें ऐसी दृढ़ता और अनुभवकी पक्की सड़कपर बनी हुई वीरवृत्ति है। ऐसी श्रद्धा बहुत थोड़े पुरुषोंमें होती है। श्रेणिक राजा ऐसी अनुपम श्रद्धा रखनेवाले थे और इसी श्रद्धाके कारण इतिहासमें उनका नाम स्वर्णाक्षरोंमें अंकित है।

श्रेणिक राजाको जिनदेव जिनगुरु और जैनधर्म पर असाधारण श्रद्धा थी। एकबार दर्दुरक नामक देवने उनकी परीक्षा करनेका निश्चय किया।

श्रेणिक जैन साधुओंको परम विरागी, तपस्वी और निस्पृह मानते थे। जैन साधुओंमें जैसी विरागवृत्ति, उन जैसी निःस्पृहता अन्यत्र कहीं भी संभव नहीं, ऐसी उनकी दृढ़ श्रद्धा थी। एक समय मार्गमें जाते हुए उन्होंने एक जैन मुनिका दर्शन किया।

उसका भेष जैन साधुसे बिल्कुल मिलता था, ऐसा होते हुए भी उसके एक हाथमें मछली पकड़नेका जाल था और दूसरा हाथ मांस भक्षण करनेको तैयार हो इस प्रकार रक्तसे सना हुआ था। एक जैन साधुकी ऐसी दशा देखकर राजा श्रेणिकका हृदय कांप उठा।

राजाको अपने समीप आते देख मुनिने जाल पानीमें डाला, मानो जलकी मछली पकड़नेका उसका नित्यका अभ्यास हो। यह आचारभ्रष्टता राजाको असह्य प्रतीत हुई।

" अरे महाराज ! एक जैन साधु होकर इतनी निर्दयता दिखलाते हुए तुम्हें कुछ लज्जा नहीं आती ? मुनिके भेषमें यह दुष्कर्म अत्यंत अनुचित है" श्रेणिकने तड़पते हुए अन्तःकरणसे यह शब्द कहा।

" तू हमारे जैसे कितनोंको इस प्रकार रोक सकेगा ! संघमें मेरे जैसे एक नहीं किन्तु असंख्य मुनि पड़े हैं जो इसी प्रकार मत्स्य-मांस द्वारा अपनी आजीविका चलाते हैं । " मुनिने उत्तर दिया ।

राजाका आत्मा मानो कुचल गया । उसकी आंखोंके आगे अंधकार छा गया । महावीरस्वामीके संघके मुनि ऐसा निर्बल मार्ग ग्रहण करें यह उसे बड़ा त्रासदायक प्रतीत हुआ ।

वह आगे चला । उस आचार भ्रष्टताका दृश्य वह भूल नहीं सका मुनिकी दुर्दशाका विचार कर वह क्षणभर मनमें दुखित होने लगा ।

थोड़ी दूर पर उसे एक साध्वी मिली, उसके हाथ पैर मेंहदीसे रंगे हुए थे । उसकी कजरारी आँखें कृत्रिम तेजसे चमकती थीं, वह पान चाबती हुई राजाके सामने आकर खड़ी हो गई ।

" तुम साध्वी हो कि वेश्या ! साध्वीके क्या ऐसे शृङ्गार और अलंकार होते हैं ? " ग्लानिपूर्वक राजाने पूछा !

साध्वी खिल खिलाकर हंस पड़ी—" तुम तो केवल अलंकार और शृंगार ही देखते हो । किन्तु यह मेरे उदरमें छह सात मासका गर्भ है यह तुम क्या नहीं देखते ? "

भ्रष्टाचारकी साक्षात् मूर्ति ! उसकी खिलखिलाहटने निष्ठुर हास्यने राजा श्रेणिकको दिग्मूढ़ बना दिया । यह स्वप्न है अथवा सत्य, इसके निर्णयके पथम ही साध्वी जैसी स्त्री बोली—

"तुम मुझ एकको आज इस वेषमें देखकर सम्भवतः आश्चर्यसे स्तब्ध हुए हो, किन्तु राजन्! तुमने जो तनिक गहरी खोज की होती तो तुम समस्त साध्वी संघको मेरी जैसी स्त्रियोंसे भरा हुआ देखते। जो आंखोंसे अंधा और कानोंसे बधिर रहा हो उसे अन्य कौन समझा सकता है?

जैन साधु और साध्वियोंमें रक्खी हुई श्रद्धा कितनी निश्चल है यह तुम जान गये होंगे।

उपरोक्त शब्द श्रेणिक श्रवण नहीं कर सका, उसने कानोंपर हाथ रखते हुए कहा:—

दुराचारियों! तुम संसारको भले ही अपने जैसा मान लो, किन्तु महावीर प्रभूका साधु साध्वियोंका संघ इतना भ्रष्ट, पतित अथवा शिथिलाचारी नहीं हो सकता है। तुम्हारे जैसे एक इसप्रकार भ्रष्ट-चरित्रके ऊपरसे अन्य पवित्र साधु साध्वियोंके संबंधमें निश्चय करना आत्मघात है। मैं तो अब तक ऐसा मानता हूं कि जैन साधु और साध्वियोंका संघ तुम्हारी अपेक्षा असंख्य गुणा उन्नत, पवित्र और सदाचार परायण है।"

अन्तमें श्रेणिक राजाकी परीक्षा करने आया हुआ दर्दुरक देव राजाके पैरों पर गिर पड़ा और उसने उनकी अचल निःशंक श्रद्धाकी मुक्त कंठसे प्रशंसा की।

प्रबल आन्तियोंके सामने श्रेणिकका श्रद्धा-दीप न बुझ सका।

अचल श्रद्धाके कारण राजा श्रेणिक, अविरति होने पर भी अगली चौवीसीके प्रथम तीर्थंकर होंगे!

(१९)

महापुरुष जम्बूकुमार।

(वीरता और त्यागके आदर्श)

(१)

विक्रम संवत्से ५१० वर्ष पहिलेकी बात है यह। उस समय मगध देशमें राजा बिंबसारका राज्य था। राजगृह उनकी राजधानी थी। उसी राजगृहीमें अर्हद्दत्तजी राज्यके सुप्रसिद्ध श्रेष्ठी थे। उनकी धर्मपत्नी जिनमती थी। वीर जम्बूकुमार इन्हींके पुत्र थे।

प्रसिद्ध विद्वान् 'विमलराज' के निकट उन्होंने विद्याध्ययन किया था। पूर्वजन्मके संस्कारके कारण वे अत्यंत प्रतिभाशाली थे। विमल राजने अपने सुयोग्य शिष्यको थोड़े ही समयमें शास्त्र संचालनमें निपुण बना दिया था। उच्च कोटिके साहित्यका अध्ययन भी उन्हें कराया था। वे अपने विद्वान् गुरुके विद्वान् शिष्य थे।

बालकपनसे ही वे बड़े साहसी और वीर थे। उनका सुगठित शरीर दर्शनीय था। एक समय उनके साहसकी अच्छी परीक्षा हुई।

वे राजमार्गसे जा रहे थे, इसी समय उन्होंने देखा कि राजका प्रधान हाथी बिगड़ पड़ा है। महावतको जमीन पर गिराकर वह अपनी सूंडको घुमाता दौड़ा आ रहा है। यमराजकी तरह जिसे वह सामने पाता उसे ही चीरकर दो टुकड़े कर देता था। उसकी भयंकर गर्जना सुनकर नगरकी जनता भयसे व्याकुल होकर इधर उधर भागने लगी। मदोन्मत्त हाथी जम्बूकुमारके निकट पहुंच गया था। वह उन्हें अपनी सूंडमें फंसानेका प्रयत्न कर ही रहा था कि उन्होंने उसकी सूंड पर एक भयानक मुष्टिका प्रहार किया। वज्रकी तरह मुष्टिके प्रहारसे हाथी बड़े जोरसे चिंघाड़ उठा। फिर उन्होंने अपने हाथके सुदृढ़ दंडको घुमाकर उसके मस्तक पर मारा। मस्तक पर दंड पड़ते ही उसका सारा मद चूर चूर हो गया। वह नम्र होकर उनके सामने खड़ा हो गया। मदोन्मत्त हाथी अब बिलकुल शान्त था।

नगरकी संपूर्ण जनता भयभीत दृष्टिसे यह सब दृश्य देख रही थी। हाथीको निर्मद हुआ देख सभीके हृदय हर्षसे खिल गए। उनके सिरसे एक भयानक संकट टल गया।

जनताने जम्बूकुमारके इस साहसकी प्रशंसा की और राजा बिंबसारके राज्य दरबारसे इस वीरताके उपलक्ष्यमें उन्हें योग्य सम्मान मिला।

जम्बूकुमारकी वीरता पर नगरका धनिक श्रेष्ठी समाज मुग्ध था। प्रत्येक धनिक उनके साथ अपना संबंध स्थापित करनेको इच्छुक था। सुन्दरी कन्याएं उनका स्नेह पानेको लालयित थी।

जंबूकुमार वैवाहिक बंधनमें नहीं पड़ना चाहते थे। उनका

हृदय आजीवन अविवाहित रहकर विश्वकल्याण करनेका था । उनकी भावनाएं महान थीं । वे अपनी शक्तिका वास्तविक उपयोग करना चाहते थे । वे चाहते थे जीवनका प्रत्येक क्षण संसारका मार्गप्रदर्शक बने । जगतको सद्धर्मका संदेश सुनानेको उनकी उत्कट अभिलाषी थी । माता पिता उनके विचारोंसे परिचित थे, लेकिन वे शीघ्रसे शीघ्र उन्हें वैवाहिक बंधनोंमें बंधा हुआ देखना चाहते थे । उनके विचारोंको सहयोग मिला । श्रेष्ठी सागरदत्त, कुबेरदत्त, वैश्रवणदत्त और श्रीदत्तने उनपर अपना प्रभाव डाला । चारोंने उन्हें चारों ओरसे बांधना चाहा अंतमें वे सफल हुए । जम्बुकुमारकी हार्दिक मनोभावनाओंको जानते हुए भी ऋषभदत्तने उन्हें विवाहका वचन दे डाला । उनका विवाह शीघ्र ही होनेवाला था किन्तु इसी समय इसके बीचमें एक घटनाने रंगमें भंग कर दिया ।

(२)

केरलपुरके राजा मृगाङ्क थे । उनकी सुन्दरी कन्या विलासवतीका वाग्दान राजा बिंबसारसे हो चुका था । राजा मृगाङ्क उन्हें अपनी कन्या देनेको तैयार थे । कन्या भी उन्हें हृदयमें अपना पति स्वीकार कर चुकी थी । यह विवाह सम्बन्ध शीघ्र ही होनेवाला था । इसी समय एक और घटना घटी ।

रत्नचूल एक अभिमानी युवक था । राजा मृगांक पर उसकी शक्तिका प्रभाव था । वह था भी शक्तिशाली, उसने अपनी शक्तिसे विलासवतीको अपनी पत्नी बनाना चाहा । उन्होंने राजा मृगांकके पास अपना संदेश भेजकर विलासवतीको अपने लिए मांगा । मृगांक

अपनी कन्या राजा बिंबसारको दे चुके थे। रत्नचूलकी शक्तिका उन्हें परिचय था, लेकिन किसी हालतमें उन्हें यह बात पसंद न थी। उसने अपनी कन्या देनेसे इनकार कर दिया।

रत्नचूलको मृगांककी यह बात असह्य हो उठी। उसने अपनी संपूर्ण सैना लेकर केरलपुर पर चढ़ाई कर दी।

मृगांक इस युद्धके लिए तैयार नहीं था। उसकी शक्ति नहीं थी कि वह रत्नचूलका मुकाबला कर सके। इसलिए इस संकटके समय अपनी आत्मरक्षाके लिए राजा बिंबसारसे उसने सहायता मांगी। बिंबसारने सहायता देना तो स्वीकार कर लिया लेकिन वे चिंतामें पड़ गए कि रत्नचूल जैसे वीरके मुकाबलेमें किस बहादुरको भेजा जाय। लेकिन उनके पास अधिक सोचनेके लिए समय नहीं था, उन्हें शीघ्र ही सहायता भेजनी थी। अपने वीर सैनिकोंको बुलाकर उनसे इस कार्यका बीड़ा उठानेके लिए उन्होंने कहा। सभी वीर सैनिक मौन थे, जंबुकुमार भी इस सभामें निमंत्रित थे। वीरोंकी कायरता पर उन्हें रोष आगया वे अपने स्थानसे उठे और बीड़ा उठाकर उसे चबालिया।

राजा बिंबसारने उनके इस साहसकी प्रशंसा की और उनके सिर पर वीर पट्ट बांधकर मृगांककी सहायताके लिए वीर सैनिकोंको साथ ले जानेकी आज्ञा दी। जंबुकुमारको अपनी भुजाओं पर विश्वास था। वे अपनी वीरताके आवेशमें बोले। महाराज! मुझे आपके सैनिकोंकी आवश्यकता नहीं, मेरी भुजाएं ही मेरी सेना है। मैं अकेला हूं सहस्र सैनिकोंके बराबर हूं। मैं अकेला ही जाता हूं। आप निश्चित रहिए, देखिए आपके आशीर्वादसे वह अभिमानी रत्नचूल अभी आपके चरणों पर लौटता है।

जंबुकुमार अकेले ही रत्नचूलके शिविरकी ओर चल दिए। अपनी सैनाके बीचमें बैठा हुआ रत्नचूल पोदनपुरके किले पर आक्रमण करनेकी आज्ञा दे रहा था। इसी समय जंबुकुमार उनके सामने बेधड़क पहुंचा। उसने न तो उन्हें प्रणाम ही किया और न आदर सूचक कोई शब्द ही कहा। अकड़कर उनके सामने खड़ा हो गया।

एक अपरिचित युवकको इस तरह बेधड़क अपने सामने खड़ा देखकर रत्नचूलको बहुत क्रोध आया। उसने तेजस्वरमें कहा—"अभिमानी युवक, तू कौन है? अपनी मृत्युको साथ लेकर यहां किस उद्देश्यसे आया है?" जंबुकुमारने कहा—"मैं राजा मृगाङ्कका दूत हूं। मैं आपको उनका यह संदेश सुनाने आया हूं। आप वीर हैं वीरोंका कार्य किसीकी वाग्दत्ता कन्याका अपहरण करना नहीं है। आपको अपने इस गलत शब्दोंको छोड़ देना चाहिए और इस अपराधके लिए क्षमा मांगना चाहिए।

रत्नचूल इन शब्दोंको सुनकर भड़क उठा। वह बोला—"दूत तुम बेशक वाक्यमूर हो। मेरे साम्हने इसतरह निःशंक बोलना अवश्य ही साहसका कार्य है। तुम्हारा मूर्ख राजा मेरी वीरतासे अपरिचित नहीं है। लेकिन दुर्भाग्य उसका साथ दे रहा है। इसीलिये उसने तुम्हें मेरे पास ऐसा कहनेको भेजा है। दूत तुम अवध्य हो, जाओ और उस कायर मृगांकको युद्धके लिए भेजो।"

"राजा मृगांक आप जैसे व्यक्तिके साम्हने युद्ध करनेको आयेंगे ऐसी आशा छोड़ देना चाहिए। आपसे युद्ध करनेके लिए तो मैं ही काफी हूं, यदि आपको युद्धकी बढ़ी हुई अपनी प्यास

बुझाना है तो आइए हम और आप निपट लें ।" यह कहकर वीर जम्बुकुमार ताल ठोककर रत्नचूलके सामने खड़ा होगया ।

रत्नचूलने अपने सैनिकोंको जम्बुकुमार पर आक्रमण करनेकी आज्ञा दी । सैनिक आज्ञा पालन करनेवाले ही थे कि पलक मारते ही जंबुकुमार रत्नचूलसे भिड़ गए । सैनिक देखते ही रह गए और दोनोंमें भयंकर युद्ध होने लगा, यह युद्ध इतना शीघ्र हुआ जिसकी किसीको संभावना नहीं थी । जंबुकुमारने अपने तीव्र शस्त्रके प्रहारसे ही रत्नचूलको घराशायी कर दिया । सैनिकोंने देखा, रत्नचूल अब जंबुकुमारके बंधनमें आ चुका है ।

रत्नचूलके बंधन युक्त होते ही सैनिकोंने शस्त्र डाल दिए । जंबुकुमार विजयके साथ साथ राजा मृगांक और विलासवतीको भी अपने साथ राजगृह ले गए । वहां बड़े उत्सवके साथ राजा बिंबसारका विलासवतीसे, पाणिग्रहण हुआ । इस विजयसे वीर जंबुकुमारका गौरव चौगुना बढ़ गया ।

(३)

सुधर्माचार्य उस दिन राजगृहके उद्यानमें आए थे । उनका कल्याणकारी उपदेश चल रहा था । जंबुकुमारके विरक्त हृदयको उनका उपदेश चुभा । धर्मके दृढ़ प्रचारक बननेकी उनकी भावना जागृत हो उठी । युद्ध क्षेत्रका विजयी वीर, आत्म विजयी बननेको तड़प उठा । आचार्यसे उसने साधु दीक्षा चाही ।

साधु जानते थे जंबुकुमारके अन्तस्तलको, लेकिन अभी थोड़ा समय उसे वे और देना चाहते थे अंदर सोई हुई गुप्त लालसाको

स्वीकार नहीं करना चाहता । अमानत वही स्वीकार करते हैं जो कुछ अपना नहीं कमा सकते । मैंने उस अपने धनकी कुछ झांकी देखी है, उसकी चमकके आगे यह पुण्यके द्वारा दीपित क्षणिक प्रभा ठहरती ही नहीं है । तुमने उस प्रभाके दर्शन ही नहीं किये हैं । यदि तुम उस वास्तविक प्रकाशके दर्शन करना चाहती हो तो मेरे साथ उस प्रकाश मार्गकी ओर चलो । फिर तुम उस प्रकाशको देख सकोगी जिससे सारा विश्व प्रकाशित होता है । इस क्षीण विलासकी चमक मेरे नेत्रोंको चकाचौंध नहीं कर सकती । इसमें विलासी पुरुष ही आकर्षित हो सकते हैं—केवल वही पुरुष जिन्होंने आत्म दर्शन नहीं किया है ।

तुम्हारा यह मादक यौवन और यह विलास किसी कामी पुरुषको ही तृप्ति दे सकता है मुझे नहीं । मेरी वासना तो मर चुकी है, उसे जीवित करनेकी शक्ति अब तुममें नहीं है । निष्फल प्रयत्न करके मेरा कुछ समय ही ले सकती हो इसके अतिरिक्त तुम्हें मुझसे कुछ नहीं मिलेगा ।

बालाओ ! तुम्हें मेरे द्वारा निराश होना पड़ रहा है, इसमें मेरा अपराध कुछ नहीं है । मेरा पथ पहले ही निश्चित था । मैं अपने निश्चित पथपर चलनेके लिए ही अग्रसर हो रहा हूं । तुम्हें यदि मेरे जीवनसे स्नेह है यदि तुम मेरे जीवनको प्रकाशमय देखना चाहती हो यदि तुम चाहती हो कि मेरा जीवन तुम्हारी विलास लीला तक ही सीमित रहकर सारे संसारका बने तो तुम मेरी अवरोधक न बनकर मुझे अपने बंधनोंको मुक्त करनेमें मदद करो ।

एक दिनके लिए बनी हुई बालापत्नियोंने अपने पतिके अन्तस्तलकी पुकार सुनी । वह पुकार केवल शाब्दिक नहीं थी। यह किसी निर्बल आत्माका दंभ नहीं था । वह एक बलवान आत्माकी दिव्यवाणी थी । बालाओंके हृदयको उसने बदल दिया । वे आगे कुछ कहनेको असमर्थ थीं । अपने इस जीवनके स्वामीके चरणोंपर उन्होंने मस्तक डाल दिया । करुण स्वरसे बोलीं—"स्वामी यह जीवन तो अब आपके चरणोंपर अर्पित होचुका है, इसे अब हम किसकी शरणमें ले जांय आप हमारे मार्गके दीपक हैं आप ही हमें मार्ग दिखलाइए । हमारा कर्तव्य क्या है यह हमें समझाइए ।"

जम्बुकुमारका हृदय एक भारसे हलका होचुका था । अबतक जो उनके लिए बोझ था वही उनका सार्थक ही बन रहा था । उनके सामने एक ही पथ था । उसी पथपर चलनेका उन्होंने आदेश दिया।

मार्ग साफ होचुका था । उसपर चलने भरका विलंब था । माता पिता अब उनके अवरोधक नहीं रह गए थे ।

विपुलाचल पर 'गौतमस्वामी केवली' की शरणमें सब पहुंचे माता, पिता, पत्नियां, विद्युत चोर और उसके साथी सब एक ही पथके पथिक थे ।

चौबीस वर्षके तरुण युवकने गणाधीश गौतमके चरणोंमें अपने जीवनको डाल दिया । गौतमने उनके विचारोंकी प्रशंसा की और लोककल्याणका उपदेश दिया। गणाधीशका आशीर्वाद लेकर वे अपने गुरु सुधर्माचार्यके निकट पहुंचकर बोले—" गुरुदेव! क्या मेरी परीक्षा समाप्त हो चुकी है या अभी कुछ और मंजिलें तय करनी हैं ! "

गुरुदेव उन पर प्रसन्न थे। बोले—"जंबुकुमार! तुम तेजस्वी त्यागी हो। तुम्हारा सांसारिक कर्तव्य समाप्त हो चुका है। अब मैं तुम्हें दीक्षा दूंगा।" सुधर्माचार्यने उन्हें साधु दीक्षा दी। उनके साथ पिता अर्हदत्त, विद्युत चोर और उसके ५०० साथियोंने भी साधु दीक्षा ली।

जंबुकुमारने उग्र तपश्चरण किया। तपश्चर्याके प्रभावसे उन्हें पूर्ण श्रुतज्ञान प्राप्त हुआ। जिस दिन उन्हें यह अद्भुत शास्त्र ज्ञान उपलब्ध हुआ था उसी दिन उनके गुरु सुधर्माचार्यको कैवल्य प्राप्त हुआ।

जंबुकुमार तपश्चर्यके क्षेत्रमें अब बहुत आगे बढ गए थे। उन्होंने अपने बढ़े हुए तपके प्रभावसे कर्म बंधनको कमजोर कर लिया था। पैंतालीस वर्षकी आयुमें जंबुकुमारको कैवल्य लाभ हुआ। कैवल्यके प्रभावसे आत्मदर्शन हुआ।

चालीस वर्षका जीवन धर्मोपदेश और संसारको शांति सुखके पथ प्रदर्शनमें व्यतीत हुआ।

कार्तिकी कृष्णा प्रतिपदाको वे मथुरापुरीके उद्यानमें अपने योगोंका निरोध कर बैठे, इसीसमय उनका आत्मा नश्वर शरीरसे निकल कर मुक्ति स्थानको पहुंचा। जनताने एकत्रित होकर उनका गुणगान किया और उनकी पुण्य स्मृतिको अपने हृदयमें धारण किया।

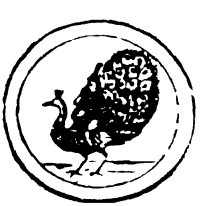

[२०]

तपस्वी-वारिषेण ।

(आत्मदृढ़ताके आदर्श)

(१)

मगधसुन्दरी राजगृहकी कुशल और प्रवीण वेश्या थी । वह अत्यंन्त सुन्दरी तो थी ही लेकिन उसकी कामकला चातुर्यता और हावभाव विलासोंकी निपुणताने उसे और भी विमुग्ध कर दिया था—उसके भावपूर्व गायन, मृदु मुस्कान और तिरछी चितवन पर अनेक युवक विवेकशून्य होजाते थे अपना हृदय और सर्वस्व समर्पित कर देते थे ।

धनिक और विलासप्रिय मानवोंको अपने विलाससे भरे कृत्रिम लावण्यके ऊपर आकर्षित करनेमें वह अत्यंत निपुण थी । वह किसीको मधुर वाक्य विलाससे, किसीको आशापूर्ण कटाक्षोंसे, किसीको नयनाभि-

रंजित नृत्यसे और किसीको स्निग्ध आलिंगन द्वारा अपने रूप जालमें फंसा लेती थी और उनका धर्म और वैभव समाप्त कर देती थी।

राजगृहमें उसके अनेक प्रेमी थे, लेकिन उसका वास्तविक प्रेम किसी पर नहीं था। उसके अनेक सौन्दर्योपासक थे, लेकिन वह किसीकी उपासिका नहीं थी, उसकी उपासना केवल द्रव्यके लिए थी। उसके अनेक चाहनेवाले थे, लेकिन वह केवल अपनी चाहकी विक्रेता थी।

अपनी रूपकी रस्सीमें बांधकर उसने अनेक युवकोंको दुर्व्यसनके गहरे गड्डेमें पटक दिया था। उस गर्तमेंसे कोई मानव अपने स्वास्थका स्वाहा कर अनेक रोगोंका उपहार लेकर निकलता था, और कोई अपना संपूर्ण वैभव फूंककर पथ २ का भिखारी बनकर निकल पाता था। कोई न कोई उपहार प्राप्त किए विना उसके द्वारसे निकल जाना कठिन था।

उसकी सीधी, सरल किन्तु कपटपूर्ण बातों और उद्दीप्त विलास मदिराके पानसे उन्मत्त, विवेकशून्य मानव, विषय सुख शांतिकी इच्छा रखते थे। उसके तीव्र, दाहक और प्रबल वेगसे बहनेवाले कृत्रिम प्रेमकी भिक्षा चाहते थे और सौन्दर्यकी उपासनामें तन्मय रहकर प्रसन्न होना चाहते थे। किन्तु उन्हें यह नहीं मालूम था कि यह मायावीपनका जीवित प्रतिबिंब, दुर्गतिका जागृत दृश्य, अधःपतन सर्वनाश और अनेक आपत्तियोंका विधाता केवल धन वैभव खींचनेका जाल है।

आज सबेरे मगध सुन्दरी विलास वस्तुओंसे पूर्ण अपनी उच्च अट्टालिका पर बैठी थी। इसी समय कोकिलकी मनोमोहकको कूकने

उसके सामने वसंतको मुग्ध कर सौन्दर्यको उपस्थित कर दिया, उसके हृदयमें रागरंग और विलासकी उद्दीप्त भावना भर दी। वह हृदयहारी वसंतकी शोभा निरीक्षणके लोभको संवरण नहीं कर सकी। मादक शृङ्गारसे सजकर वसंत उत्सव मनानेके लिए वह राजगृहके विशाल उपवनकी ओर चल पड़ी। उपवनके नवीन वृक्षोंपर विकसित हुए मधुर कुसुमोंको देखकर उस विनोदिनीका हृदय खिल उठा। मधुरससे भरे हुए पुष्प समूहपर गुंजार करते हुए मधुपोंके मधुर नादने उसके हृदयको मुग्ध कर दिया। उपवनकी प्रत्येक शोभासे उसका हृदय तन्मय हो उठा था। कोकिलका कलित कूजन पक्षियोंका मधुर कलरव और प्रेमका संदेश सुनाते हुए एक डालीसे दूसरी डालीपर कुदकना, चहचहाना हृदयको बरबस छीन रहा था।

उपवनके सजीव सौन्दर्यको देखते हुए उसकी दृष्टि एक दूसरी ओर जा पड़ी यह एक चमकता हुआ हार था जो श्रीकीर्ति श्रेष्ठीके गलेमें पड़ा हुआ था। मगधसुन्दरीका मन उसकी मोहक प्रभा पर मुग्ध होगया। वह आश्चर्य चकित होकर विचार करने लगी। मैंने अबतक कितने ही धनिकोंको अपने रूप जालमें फंसाया और उनसे अनेक अमूल्य उपहार प्राप्त किए, लेकिन इसतरहके सुन्दर हारसे मेरा कंठ अबतक शोभित नहीं होसका, यह मेरे सौन्दर्यके लिए अत्यन्त लज्जाकी बात है। अब इस हारसे कंठ सुशोभित होना चाहिए नहीं तो मेरा सारा आकर्षण और चातुर्य निष्फल होगा।

नारियोंको अपनी स्वाभाविक प्रकृतिके अनुसार बहुमूल्य वस्त्रों और भूषणोंसे प्राकृतिक प्रेम हुआ करता है। अधिकांश महिलाएं

चमकीले भूषण और भड़कीले वस्त्रोंको पहन कर ही अपनेको सौभाग्य शालिनी समझती हैं। वेशक उनमें सद्गुणोंके लिए कोई प्रतिष्ठा न हो, विद्या और कलाओंका कोई प्रभाव न हो, शील और सदाचारका कोई गौरव न हो, लेकिन वह केवल नयनाभिरंजित वस्त्र और भूषणोंसे ही अपनेको अलंकृत कर लेनेपर ही कृत कृत्य समझ लेती हैं। अपनेको सम्पूर्ण गुण सम्पन्न और महत्वशालिनी समझ लेनेमें फिर उन्हें संकोच नहीं होता। इसलिए ही नारी गौरवके सच्चे भूषण और अनमोल रत्न विद्या, कला, सेवा, संयम, सदाचार आदि सद्गुणोंका उनकी दृष्टिमें कोई महत्व नहीं रहता। संसारमें यश और योग्यता प्राप्त करनेवाले बहुमूल्य गुणोंका वे कुछ भी मूल्य नहीं समझतीं, और न उनके पानेका उचित प्रयत्न करती हैं। वे हरएक हालतमें अपनेको कृत्रिमतासे सजानेका ही प्रयत्न करती हैं। गहनोंके इस बढ़े हुए प्रेमके कारण वे अपनी आर्थिक परिस्थितिको नहीं देखतीं वे नहीं देखतीं जेवरोंसे सजकर स्वर्ण परी बननेकी इच्छा पूर्तिके लिए उनके पतिको कितना परिश्रम करना पड़ता है, कितना छल और कपट करके अर्थ संग्रह करना पड़ता है। और वे किस निर्दयतासे उनके उस उपार्जित द्रव्यको जेवरोंकी बलिवेदी पर बलिदान कर देती हैं। कितनी ही भूषणप्रिय महिलाएं अपनी स्थितिको भी नहीं देखतीं और दूसरी धनिक बहनोंके सुन्दर गहनोंको देखकर ही उनके पानेके लिए अपने पति और पुत्रोंको सदैव पीड़ित किया करती हैं, और सुन्दर गृहस्थ जीवनको अपनी भूषण प्रियताके कारण कलह और झगड़ेका स्थान बना देती हैं।

बहुमूल्य हारसे अब तक सूना ही है। ओह! उस चमकदार हारकी प्रभा अब तक मेरी आंखोंके सामने नृत्य कर रही है। यदि उसे पहनकर मैं तुम्हारे सामने आती तो तुम मेरे सौन्दर्यको देखते ही रह जाते। यदि तुम्हारे जैसे कुशल प्रियतमके होते हुए भी मैं वह हार नहीं पा सकी तो मेरा जीना बेकार है। प्रियतम! बोलो क्या वह हार तुम मेरे लिए ला सकते हो? आह! यदि वह सुन्दर हार मैं पा सकती— यह कहते हुए उसके मुंह पर फिर एक विषादकी रेखा नृत्य करने लगी।

विद्युतने उसे सान्त्वना देते हुए दृढ़ताके स्वरमें कहा—ओह प्रियतमे! इस साधारणसे कार्यके लिए इतनी अधिक चिंता तूने क्यों की? मैं समझता था इतनी लम्बी भूमिकाके अन्दर कोई बड़ा रहस्य होगा। लेकिन यह तो मेरे बाएं हाथका खेल है। उस तुच्छ हारके लिए तुझे इतनी बेचैनी हो रही है! तू इसे अब दूर कर। विद्युतके हस्त कौशलको और साथ ही श्रीषेण श्रेष्ठीके उस चमकते हुए हारको अपने गलेमें पड़ा अभी ही देखेगी।

मगधसुन्दरी हर्षसे खिल उठी थी, उसने पूर्णेन्दुकी हंसी बिखेरते हुए कहा—प्रियतम! अहा! आप वह हार मुझे ला देंगे? आप अवश्य ही ला देंगे। आप जैसे प्रियतमके होते मैं उस हारसे कैसे वंचित रह सकती हूं? हार देकर आप मेरे हृदयके सच्चे स्वामी बनेंगे। प्रियतम! आज आपके सच्चे प्रेमकी परीक्षा होगी। मैं देखती हूं कितनी शीघ्र मेरा हृदय हारसे विभूषित होता है।

विद्युत अब एक क्षण भी वहां नहीं ठहर सका। हार हरणके लिए वह उसी समय श्रीषेण श्रेष्ठीके महलकी ओर चल पड़ा। उसने

अपनी कलाका परिचय देते हुए श्रेष्ठीके शयनागारमें प्रवेश किया। श्रीषेणके गलेका चमकता हुआ हार उसके हाथमें था। हार लेकर वह महलके नीचे उतरा। उसका दुर्भाग्य आज उसके पास ही था। नीचे उतरते हुए राज्य-सैनिकोंने उसे देख लिया। विद्युतने भी उन्हें देखा था। उसका हृदय किसी अज्ञात भयसे धड़क उठा। लेकिन साहस और निर्भयताने उसका साथ दिया, नीचे उतरकर अब वह राज पथपर था।

विद्युतने हार चुरा तो लिया लेकिन वह उसकी चमकती हुई प्रभाको नहीं छिपा सका। उसके हाथमें चमकते हुए हारको देखकर सैनिक उसे पकड़नेके लिए उसके पीछे दौड़े। सैनिकोंको अपने पीछे दौड़ता देख विद्युत भी अपनी रक्षाके लिए तीव्रतासे दौड़ा। भागनेमें वह सिद्धहस्त था। प्रत्येक मार्ग उसका देखा हुआ था। वह इधर उधरसे चक्कर काटता सैनिकोंको धोखा देता हुआ जन शून्य श्मशानके पास पहुंचा। उसने अपनेको बचानेका भरसक प्रयत्न किया था। लेकिन आज उसका सारा कौशल बेकार था, वह अपनेको बचा नहीं सका। सैनिक उसके पीछे तीव्रतासे दौड़े हुए आरहे थे। उसने साहस करके पीछेकी ओर देखा, सैनिक उसके बिलकुल निकट आ चुके थे। अब वह सैनिकोंके हाथ पड़नेको ही था—उसका जीवन अब सुरक्षित नहीं था, इसी समय दैवने उसकी रक्षा की। एक उपाय उसके हाथ लग गया, उसे अपनेको बचानेके प्रयत्नमें सफलता मिली। पास ही एक वृक्षके नीचे राजकुमार वारिषेण योग साधन कर रहे थे, उसने उस बहुमूल्य हारको उनके सामने फेंक दिया और स्वयं वे पासके पेड़ोंकी झुरमटमें जा छिपा।

(४)

राजकुमार वारिषेण राजगृहके प्रसिद्ध नरेश बिंबसारके प्रतापशाली पुत्र थे। माता चेलिनी द्वारा उन्हें बाल्यावस्थासे ही धर्म और सदाचार संबंधी उच्चकोटिकी शिक्षा उन्हें मिली थी। रानी चेलिनी उच्चकोटिकी धार्मिक प्रतिभाशाली महिला थी, पथभ्रष्ट हुए राजा बिंबसारको उन्होंने धर्मके श्रेष्ठ मार्गपर लगाया था। विदुषी और धर्मशीला माताके जीवनका प्रभाव वारिषेणके कोमल हृदय पर पड़ा था।

बालकोंके जीवनकी सच्ची शिक्षिका और उसे सुयोग्य बनानेवाली सर्वश्रेष्ठ शिक्षिका उसकी जननी ही है। पुत्रको जो शिक्षा जननी बाल्यावस्थासे ही सरलतापूर्वक हंसते और खेलते हुए देखकर उसके जीवनको मधुर और सुखमय बना सकती है उसकी पूर्ति सैकड़ों शिक्षिकाओं द्वारा भी नहीं हो सकती। माता पिताके आचरणोंको बालक बाल्यावस्थासे ही ग्रहण करता है। पिताकी अपेक्षा बालकको माताके संरक्षणमें अपना अधिक जीवन व्यतीत करना पड़ता है। बालकका हृदय मोमके सांचेकी तरह होता है, माता जिस तरहके चित्र उसके मानस पटल पर उतारना चाहे उस समय आसानीसे उतार सकती है। बालक माताके प्रत्येक संस्कार उसके आचरण, विचार और संकल्पोंका अपने अन्दर एक सुन्दर चित्र बनाता रहता है, वह जो उस समय उसका दायरा केवल माताकी गोद तक सीमित रहता है उसके चारों ओर वह जिन विचारोंके रंगोंको पाता है उन्हींसे अपने विचारोंके धुंधले चित्रोंको चित्रित करता है। समय पाकर उसके वही धुंधले चित्र-वही अपरिपक्व विचार एक दृढ़ संकल्पका स्थान ग्रहण कर लेते हैं। वही

संकल्प उसके जीवनसाथी होते हैं। समयकी गति और अनुकूल वायु उन्हीं विचारोंको जीवन देकर पुष्ट करती है।

विदुषी चेलिनी इस मनोविज्ञानको जानती थी। उसने वारिषेणके जीवनको पवित्रताके सांचेमें ढालनेका महान प्रयत्न किया था। उसने उस वातावरणसे अपने पुत्रको बचानेका प्रयत्न किया था जिसमें पड़कर बच्चोंका जीवन नष्ट होजाता है।

अधिकांश महिलाएं अपने बालकोंको आडम्बरमें मग्न रखकर उनके जीवनको विलासमय बना देती हैं। शृंगार और बनावट द्वारा उन्हें हाथका खिलौना ही बनाए रहती है। जरा जरासी बातोंमें उन्हें डरा धमकाकर और भूतका भय दिखाकर उनका हृदय भयसे भर देती हैं। विद्या, कला, नीति और सदाचारके स्थान पर असभ्यतापूर्ण विदेशी शृङ्गार और बनावटसे उनका मन और शरीर सजाती रहती है। उनके खानेके लिए शुद्ध और पवित्र वस्तुएं न देकर बाजारकी सडी गली मिठाइयों और नमकीनोंकी चट लगाकर उन्हें इन्द्रिय लोलुप बनाती हैं। मूढ़, दुराचारी, व्यसनी तथा विवेकहीन सेवकोंकी संरक्षतामें देकर उनकी उन्नति और विकास मार्ग बन्द कर देती हैं। उन दुर्व्यसनी सेवकोंसे वह गंदी गालियां सीखते हैं। अपवित्र आचरणोंसे अपने हृदयको भरते हैं और अपने जीवनको निम्नतर बनाते हैं। उनके हाथमें जीवन विकसित करनेवाली पवित्र पुस्तकें न देकर उन्हें जेवरोंसे सजाती हैं, विद्या और ज्ञान-संपादनकी अपेक्षा वे खेलको ही अधिक पसंद करती हैं। विदेशी खिलौनों और भड़कदार भूषणोंके खरीदनेमें जितना द्रव्य वे बरबाद

महाराज ! इतने अचंभेकी बात मैंने आज तक नहीं देखी। राजकुमारके शरीरके अन्दर बड़ा ही चमत्कार है, आप चलकर देखिए, मैंने उनके शरीरपर तलवारका वार किया लेकिन उनके पुण्यमय शरीर पर उसका कुछ भी असर नहीं हुआ।

वधिकके द्वारा कुमार वारिषेणके सम्बंधमें इस आश्चर्यजनक घटनाका होना सुनकर महाराज अपने मंत्रियों सहित वहां जानेका प्रयत्न करने लगे। इसी समय उन्होंने अपने दरबारमें एक व्यक्तिको आते हुए देखा—वह विद्युत चोर था। विद्युत यद्यपि अत्यंत निष्ठुर प्रकृतिका पुरुष था लेकिन जब उसने प्रजाप्रिय कुमार वारिषेणके निर्दोष प्राण नष्ट होनेका संवाद सुना तब उसका हृदय जो कभी किसी घटनासे नहीं पिघलता था—करुणासे आर्द्र हो उठा। इसी समय उसने वधिकोंके द्वारा कुमार वारिषेणकी विचित्र रीतिसे प्राण रक्षाका समाचार सुना। अब उसे अपने अपराधके प्रकट होनेका भी भय हुआ था इसलिए यह शीघ्रसे शीघ्र महाराजके पास अपना अपराध प्रकट करनेके लिए आया था। आते ही वह महाराजाके चरणोंमें गिर पड़ा और बोला—महाराज ! आप मुझे नहीं जानते होंगे। मैं आपके नगरका प्रसिद्ध चोर विद्युत हूं, मैंने इस नगरमें रहकर बड़े २ अपराध किए हैं। यह अमौलिक हार मैंने ही चुराया था लेकिन अपनेको सैनिकोंके हाथसे बचता हुआ न देखकर ध्यानस्थ हुए कुमारके सामने फेंक दिया था। वास्तवमें कुमार बिलकुल निर्दोष हैं। हारका चुरानेवाला तो मैं हूं, आप मुझे प्राण दण्ड दीजिये। विद्युत-चोरके कथनसे महाराजको कुमार वारिषेणकी निर्दोषतापर पूर्ण विश्वास होगया। वे शीघ्र ही वधस्थलकी ओर पहुंचे।

कल्पवृक्षकी मालाओंसे सुशोभित, पुण्यकी पवित्र आभासे परिपूर्ण राजकुमार वारिषेणकी भव्य मुखमुद्राको उन्होंने दूरसे ही देखा उसे देखकर राजा विम्बसारको अपने द्वारा दी गई अन्यायपूर्ण दंडाज्ञा पर बहुत ही पश्चात्ताप हुआ, उनका हृदय पश्चातापके वेगसे भर आया। वह अपने पुत्रका दृढ़ आलिंगन कर हृदयके आतापको अश्रुओं द्वारा बहाते हुए बोले—पुत्र! क्रोधकी तीव्र भावनामें बहकर, विचारशून्य होकर, मैंने तेरे लिए जो दंडाज्ञा दी थी उसका मुझे बड़ा खेद है। तेरे जैसे दृढ़ सत्यव्रती और सच्चरित्र पुत्रके लिए संपूर्ण जनताके समक्ष जो तिरस्कारपूर्ण व्यवहार किया है उसे मैं अपना महान् अपराध समझता हूं। आह! क्रोधके वेगने मुझे बिलकुल अज्ञानी बना दिया था इसलिए मैंने तेरी पवित्रताका तनिक भी विचार नहीं किया। पुत्र! तू बिलकुल निर्दोष है, तू मेरे इस अन्याय तथा अविचारपूर्ण कार्यके लिए क्षमा प्रदान कर। वास्तवमें तू सच्चा धर्मात्मा और दृढ़ प्रतिज्ञ है। धार्मिक दृढ़ताके इस अपूर्व चमत्कारने तेरी सत्यनिष्ठाको सारे संसारमें अखंड रूपसे विस्तृत कर दिया है। देवों द्वारा किए आश्चर्यजनक कार्यने तेरी सच्चरित्रता पर अपनी दृढ़ छाप लगा दी है, तेरी इस अलौकिक दृढ़ता और क्षमताके लिए तुझे मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूं।

महाराजके पश्चाताप पूर्ण हृदयसे निकले करुण उद्गारोंसे कुमार वारिषेणका हृदय विनय और प्रेमसे आविर्भूत होगया। कहने लगा—पिताजी! आपने मुझे दंड देकर न्यायकी रक्षा और कर्तव्य पालन किया है आपका यह अपराध कैसे कहा जा सकता है? कर्तव्य पालन कभी भी अपराधकी कोटिमें नहीं आ सकता। हां, यदि आप मुझे सदोष

समझ कर भी पुत्र प्रेमसे आकर्षित होकर मुझे उचित दंड नहीं देते तो यह अवश्य ही आपका अन्याय होता ।

जो राजा मनुष्य प्रेम अथवा व्यवहारिक सम्बन्धमें पड़कर न्यायका उल्लंघन करते हैं वह न्यायकी हत्या करनेवाले अवश्य ही अपराधी हैं। मैं जानता हूं मैं अपराधी नहीं था, लेकिन आपके न्यायने तो मुझे अपराधी ही पाया था, फिर आप मुझे दंड न देते तो आपकी जनता इसे क्या समझती ? क्या वह यही नहीं समझती कि आपने पुत्र-प्रेममें आकर न्यायकी अवज्ञा की है, ऐसी दशामें आप क्या उस लोकापवादको सहन करते हुए न्यायकी रक्षा कर सकते ? कभी नहीं ! आपने मुझे दंड देकर न्याय सत्ताकी रक्षा करते हुए प्रजावत्सलताका पूर्ण परिचय दिया है, आपकी इस न्यायपरायणतासे आपका सुयश संसारमें विस्तृत रूपसे प्रख्यात होगा। मुझे आपके न्यायका गौरव है. मेरा हृदय उस समय जितना प्रसन्न था उतना ही अब भी प्रसन्न होरहा है ।

यह तो मेरे पूर्व जन्मके कृतकर्मोंका संघर्ष था जिसके कारण मुझे अपराधीकी श्रेणीमें आना पड़ा। कर्मफल प्रत्येक व्यक्तिके लिए भोगना अनिवार्य है इसके लिए किसी व्यक्तिको दोष देना मूर्खता है।

धर्मभक्त पुरुषोंके साहस, दृढ़ता और धार्मिकताका परीक्षण तो उपसर्ग और आपत्तियें ही हैं। यदि मेरे ऊपर यह उपसर्ग न आया होता, इस तरह मेरा तिरस्कार न हुआ होता तो मेरे सदाचरण और आत्म दृढ़ताका प्रभाव मानवों पर कैसे पड़ता ? चंदन जितना घिसा जाता है पुष्प यंत्रमें जितने पेले जाते हैं उनसे उतना ही अधिक सौरभ विकसित होता है। स्वर्ण जितनी तेज आंच पाता है, उतनी ही अधिक चमक वह पाता है। इस तरह धार्मिक और कर्तव्य निष्ठ

दृढ़व्रती वर्द्धमान अनंतशक्ति महात्मा महावीरने, कठोर उपसर्गोंके सामने विजय प्राप्तकी । आत्म शक्तिसे बढ़े हुए भगवान् महावीरने ध्यानकी संरक्षतामें अपनी समस्त आत्म शक्तियोंका संगठन किया फिर पद दलित टुकराए और क्षीण हुए मोह सुभटपर भयंकर प्रहार किया । ध्यानकी तंत्रताके सामने मोह एक क्षणको भी स्थिर नहीं रह सका । उसके साथी क्रोध, मान, माया, लोभ राग, द्वेष आदिके पैर भी उखड़ गए, उसका सम्पूर्णतः पतन हुआ ।

महावीरके निर्मल आत्मामें अनंत ज्ञानका प्रकाश स्फुरित हुआ उसके उदित होते ही संपूर्ण आत्म गुण विकसित होगए, केवलज्ञान और अनंतदर्शनकी दिव्य शक्तिसे उन्होंने संसारके सभी पदार्थोंका दिग्दर्शन किया ।

(४)

आत्मविजयी महात्मा महावीरके अलौकिक ज्ञान साम्राज्यका महा महोत्सव मनानेके लिए स्वर्गाधिपति इन्द्र देवताओंके समूह सहित आया । उनके अभूतपूर्व केवलज्ञान साम्राज्यकी महिमा प्रदर्शित करनेके लिए कुबेरको उनका सुन्दर समास्थल बनानेका आदेश दिया । मानवोंके हृदयोंमें आश्चर्य हर्ष और आनंदकी धारा बहानेवाला समास्थल बन गया । उसमें बारह सभाएं थीं सभाके बीचमें सुन्दर सिंहासन था, सिंहासन पर बैठे हुए भगवान् महावीरके दिव्य शरीरका दर्शन कर देव और मानव अपने नेत्रोंको सफल बनाने लगे ।

महावीरके समवशरणमें प्रत्येक जातिके मानवको समान अधिकार था । प्राणी समुदाय उनका भाषण सुननेको उत्सुक था, लेकिन

उनकी दिव्यध्वनि प्रकट नहीं हुई। इन्द्रने इसका कारण जानना चाहा, वे कारण समझ गए। कारण यह था कि उनकी दिव्य ध्वनिसे प्रकट होनेवाले उपदेशोंकी व्याख्या करनेवाला कोई विद्वान उस समय वहां उपस्थित नहीं था। इन्द्र शीघ्र ही इस समस्या को हल करना चाहते थे। मानवोंके चंचल चित्तको वे जानते थे उपस्थित जनता महावीरकी वाणी सुननेको कितनी उत्सुक है उन्होंने इस समस्याके सुलझानेका प्रयत्न किया और वे उसमें सफल भी हुए। समस्याका एक ही हल था—गौतम ब्राह्मणको लाना। परन्तु उसका लाना भी तो कठिन था लेकिन उसे कौन लाए? अंतमें इन्द्रने स्वयं इस कार्यको अपने हाथमें लिया। उन्होंने जनताको संबोधित करते हुए कुछ समयको धैर्य रखनेका आदेश दिया और फिर वे ब्राह्मणका वेष धारण कर विद्वान् गौतमको लानेके लिए चल दिए।

गौतम शिष्य मंडलीके समूहमें बैठे हुए अपनी प्रतिभ के प्रबल तेजको प्रकाशित कर रहे थे। वे दीर्घ शिखाधारी अपने पांडित्यका अनुचित अहंकार रखनेवाले वेद विषय पर गंभीर व्याख्यान दे रहे थे उनका हृदय अत्यंत प्रसन्न और सुख मग्न था। विवेचना करते हुए उन्होंने एकबार अपनी शिष्यमंडलीकी ओर गंभीर दृष्टिसे देखा। शिष्यगण सरल और मौनरूपसे गुरुदेवके मुखसे निकले गंभीर विवेचनको उत्सुकताके साथ सुन रहे थे। इसी समय शिखा सूत्रसे वेष्टित एक शरीरधारी ब्राह्मणने व्याख्यान सभामें प्रवेश किया ब्राह्मण अत्यंत वृद्ध था उसके चेहरेसे विद्वत्ता स्पष्ट रूपसे झलक रही थी व्याख्यान सुननेकी इच्छासे वह सबसे पीछे एक स्थानपर बैठ गया।

गौतमका विवेचन वास्तवमें विद्वत्ता पूर्ण था। बड़े झरनेके कल-कलनादकी तरह धाराबाहिक रूपसे बोल रहे थे। गंभीर तर्क और युक्तियोंसे वे अपने सिद्धान्तकी पुष्टि करते जाते थे। शिष्यमंडली मंत्रमुग्धकी तरह उनका व्याख्यान सुन रही थी। ओजस्विनी भाषामें विवेचन करते हुए विद्वान गौतम सचमुच ही सरस्वतीके पुत्रकी तरह मालूम पड़ रहे थे। उनकी उक्तिएं उनकी गवेषणाएं और उनकी वक्तृताका ढंग चमत्कारिक था। विद्वानोंकी दृष्टिमें आजका व्याख्यान उनका अत्यंत महत्वपूर्ण था, व्याख्यान समाप्त हुआ। धन्य धन्यकी सच्च ध्वनिमें समाधान गूंज उठा। सम्पूर्ण शिष्यमंडलीने एकस्वरसे इस अभूतपूर्व व्याख्यानका अनुमोदन किया।

शिष्य समूहमें बैठा हुआ एक वृद्ध पुरुष ही ऐसा था जिसके मुंहसे न तो कोई प्रशंसात्मक शब्द ही निकला और न उसने इस व्याख्यानका कुछ भी समर्थन ही किया। वह केवल निश्चल दृष्टिसे उनके मुंहकी ओर ही देखता रहा। विद्वान् गौतम उसके इस मौनको सहन नहीं कर सके वे कुछ क्षणको सोचने लगे। मेरे जिस भाषणको सुन कर कोई भी विद्वान प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकता उसके प्रति इस ब्राह्मणकी इतनी उपेक्षा क्यों है? इसने अपना कुछ भी महत्व प्रदर्शित नहीं किया। तब क्या इसे मेरा भाषण रुचा नहीं? अच्छा तब इसे अपने भाषणका और भी चमत्कार दिखलाना चाहिए। देखूं इसका मन कैसे मुग्ध नहीं होता है। मैं देखता हूं यह ब्राह्मण अब मेरी प्रशंसा किए बिना कैसे रह सकता है? वे अपने प्रखर पांडित्यकी धारा बहाते हुए अपने विशाल ज्ञानका परिचय देने लगे।

इस अंतिम व्याख्यानमें उन्होंने अपनी संपूर्ण प्रतिभाके चमत्कारको प्रदर्शित कर दिया था। उनकी शिष्य मंडलीने भी उनका इस तरह धारावाहिक और तर्क तथा गवेषणा पूर्ण भाषण कभी नहीं सुना था, वह चित्र लिखित थे। द्विगुणित जयध्वनिसे एक बार सभा मंडप फिर गूंज उठा. व्याख्यान समाप्त हुआ, विद्वान गौतमका सारा शरीर पसीनेसे तर हो गया था। अन्य दिनकी अपेक्षा आज अपने भाषणमें उन्हें अधिक परिश्रम करना पड़ा था उन्होंने देखा वृद्ध ब्राह्मण अब भी मौन था उनके चेहरे पर इस भाषणका कुछ भी प्रभाव पड़ा नहीं दिखता था।

गौतम अब अपने आश्चर्यको नहीं रोक सके. वृद्ध ब्राह्मणकी ओर एक तीव्र दृष्टि डालते हुए वे बोले। विप्रवर! तुमने मेरे इस पांडित्य भरे हुए चमत्कारिक भाषणका कुछ भी अनुमोदन नहीं किया। क्या तुम्हें मेरा यह व्याख्यान नहीं रुचा? तब क्या मेरा भाषण सर्वोत्कृष्ट नहीं था? क्या मेरे समान कोई महा विद्वान् इस पृथ्वी-मंडलपर तुमने देखा है? मुझसे स्पष्ट कहो तुमने मेरे इस भाषणकी प्रशंसा क्यों नहीं की?

वृद्ध ब्राह्मणने कहा—विद्वान् गौतम! आपको अपनी विद्वत्ताका इतना अभिमान नहीं होना चाहिए, आपसे सहस्रगुणी अधिक प्रतिभा रखनेवाले विद्वान् इस पृथ्वी मंडलपर हैं

आश्चर्यसे अपना मस्तक हिलाते हुए सम्पूर्ण शिष्यमंडलीने एक स्वरसे कहा—कदापि नहीं, गुरुराजके समान प्रतिभा संपन्न पुरुष इस पृथ्वीमंडलपर दूसरा कोई हो ही नहीं सकता। उनका स्वर क्रोधपूर्ण था।

सर्वज्ञ घोषित करनेवाला दिगम्बर महावीर तेरा गुरु है? अच्छा चल, मैं उससे अवश्य ही विवाद करूंगा और तेरे प्रश्नका भी उत्तर दूंगा।

ब्राह्मण वेषधारी इन्द्रराज जो कुछ चाहते थे वही हुआ। वे किसी तरह ज्ञानमदसे मदोन्मत्त गौतम ब्राह्मणको भगवान् महावीरके सभास्थलमें लेजाना चाहते थे, जिसे गौतमने स्वयं ही स्वीकृत किया। वे प्रसन्न होकर बोले—विद्वन् गौतम! हम आपकी बातसे सहमत हैं, आप शीघ्र ही मेरे गुरुके पास चलिए।

(६)

महावीरके सभास्थलकी महिमा बढ़ानेवाला सभाके बीचमें एक विशाल मानस्तंभ था जिस पर जैनत्वका प्रदर्शक केशरिया झंडा लहरा रहा है। मानस्तंभके चारों ओर शांतिका साम्राज्य स्थापित करनेवाली दिगम्बर मूर्तियां विराजमान थीं। छद्मवेषधारी इन्द्रके साथ २ चलते हुए दूरसे ही मानस्तंभको देखा। उसे देखते ही उसके हृदय पर विलक्षण प्रभाव पड़ा, वह महावीरकी महत्ताका विचार करने लगा— उसके हृदयका मिथ्या अहंकार उस मानस्तंभको देखते ही कुछ कम हो गया, उसका मन अब सरल और शान्त था। सरलताके प्रवाहमें बह कर उसने वर्द्धमान महावीरके सभास्थलमें प्रवेश किया।

अनंत दीप्तिसे सूर्यमंडलकी प्रभाको लज्जित करनेवाले महावीरको उसने देखा, देवता और अगणित मानव समूह शांत नम्र और शांत हुआ उनका उपदेश सुननेको उत्सुक हुआ बैठा है। एक बार पूर्ण दृष्टिसे उन्होंने उनके शांत, सरल और विकार रहित मुख मंडलको देखा, उनकी शांत मुद्राका गौतमके हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा,

उनका मन विनय और भक्तिसे नम्र हो गया। कभी किसीके साम्हने न झुकनेवाला उनका मस्तिक भगवान् महावीरके आगे झुका, उनका सारा अभिमान गलित हो गया।

हृदयका अहंकार नष्ट होते ही सद्विचारकी भावनाएं लहराने लगीं, वह बोलने लगे—अहा! जिस महात्माका इतना प्रभाव है, जिसके समवशरणकी इतनी महिमा है, बड़े ऋषि, महात्मा और तत्वज्ञानी जिसकी चरणसेवामें उपस्थित हैं, उस महात्मा महावीरसे वादविवाद करके मैं किसतरह विजय प्राप्त कर सकता हूं? इनके साम्हने मेरा वाद करना हास्य करनेके अतिरिक्त कुछ नहीं होगा। सूर्यमंडलके सामने क्षुद्र जुगनूकी समता करना, केवल अपनी मूर्खताका परिचय देना ही कहा जायगा। खेद है मुझे अपने अक्षरज्ञानका इतना अभिमान रहा, लेकिन मुझे हर्ष है कि मैंने उसकी तहको शीघ्र ही पालिया।

यह सच है जबतक कोई साधारण मानव अपने साम्हने किसी असाधारण व्यक्तिको नहीं देखता, तबतक उसे अपनी क्षुद्रताका भान नहीं होता, और उसे बड़ा अभिमान रहता है। ऊंट जबतक पहाड़की उच्च चोटीके साम्हनेसे नहीं निकलता तबतक अपनेको संसारमें सबसे ऊंचा मानता है, लेकिन पहाड़के नीचेसे आते ही उसका अपनी उच्चताका सारा अभिमान गल जाता है। मेरी भी आज वही दशा है। सत्य ज्ञान और विवेकसे रहित मैं अपनेको पूर्ण ज्ञानी मानता हुआ मैं अबतक कूपमंडूक ही बना था, लेकिन महात्माके दर्शनमात्रसे मेरा सारा भ्रमजाल भंग होगया। अब यदि मैं अपनेको वास्तविक मानव बनाना चाहता हूं तो मेरा कर्तव्य है कि मैं इनसे वादविवाद

न करूं नहीं तो इस विवादमें मुझे सिवाय हास्य और अपमानके कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। मेरा जो कुछ गौरव आज है वह भी नष्ट हो जायगा। इसके अतिरिक्त मैं इनके उस ब्राह्मण शिष्यके प्रश्नका उत्तर देनेमें भी असमर्थ रहा, इसलिए मुझे अपनी पूर्व प्रतिज्ञाके अनुसार इनका शिष्यत्व ग्रहण करना चाहिए, ऐसे सर्व पूज्य महात्माका शिष्य बनना भी मेरे लिए एक महान् गौरवकी बात होगी। इस तरह विचार करते हुए महामना गौतमने अपने संपूर्ण शरीरको पृथ्वी तक झुका कर भगवान महावीरको साष्टांग प्रणाम किया। मोह कर्मका परदा भंग हो जानेसे उनका हृदय सम्यग् श्रद्धा और ज्ञानसे भर गया था, उन्होंने भक्तिके आवेशमें आकर भगवान महावीरकी सुन्दर शब्दोंमें स्तुति की, फिर उनका शिष्य बनकर पूर्ण ज्ञान प्राप्त करनेकी प्रार्थना की। भगवान् महावीरने अपनी करुणाकी महान् धारा बहाते हुए उसे अपनी शरणमें लिया और उसे जैनेश्वरी दीक्षा प्रदान की। गौतमके साथ उसके दोनों बंधुओं और सभी शिष्योंने भी जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण की। 'जैन धर्मकी जय' से सारा आसमान गूंज उठा।

सभास्थित सभी व्यक्तियोंने गौतमके इस समयोपयोगी सुकृत्यकी सराहना की। अभिमानके शिखर पर चढ़ा हुआ विवादी गौतम एक समयमें ही भगवान् महावीरका प्रधान शिष्य बन गया। साधुओंके गणने भी उन्हें अपना प्रधान स्वीकार किया, और उन्हें गणधरकी उपाधि प्रदान की। यह सब कार्य पलक मारते हुआ, मानो किसी जादूगरने जादू कर दिया हो, ऐसा यह सब कार्य होगया। भगवान् महावीरके यह अद्भुत आकर्षणका प्रभाव था जो अहिंसा और सत्यके

रहस्यसे विमुख मिथ्याज्ञानमें आसक्त गौतम आज श्रमणसंघके मोक्ष-लक्ष्मीका महापात्र बन गया। धन्य गौतमकी अनुभूति और उनकी दृष्टि और धन्य महामना गौतमका सौभाग्य

(७)

पाखंडोंका ध्वंस करनेवाली, मिथ्यावादियोंकी मदविमर्दक और सत्यार्थ धर्मका रहस्य उद्घाटन करनेवाली भगवान महावीरकी वाणीका प्रकाश हुआ। उनकी दिव्यध्वनि द्वारा सप्ततत्त्व, पंचास्तिकाय, नव पदार्थ, छह कायके जीव, छह लेश्या, मुनियोंके पांच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति और गृहस्थोंके बारह व्रत और ग्यारह प्रतिमाओंका विवेचन होने लगा। गृहस्थ और साधु जीवनके कर्तव्य समझाए जाने लगे और भव्योंके मनकी सभी शंकाओंका जाल नष्ट होने लगा।

जयनीति जैन शासनरूपी पताका विश्वके अन्तरिक्ष आकाशमें फहराने लगी, महावादियोंने अपना मिथ्यामत त्यागकर भगवानके वीर शासनकी शरणमें आए। क्रियाकांडोंका अकांड तांडव समाप्त हुआ। अज्ञानताका अंधेरा भागा। अत्याचार और अनाचारोंकी कमर टूटी, हिंसा और बलिदान प्रथाका अस्तित्व नष्ट हुआ और संसारके सभी प्राणी सुख और शांतिकी गहरी सांस लेने लगे

कार्तिकी कृष्णपक्ष अमावस्याकी रजनी शान्त थी, उस समय कुछ तारे झिलमिल हो रहे थे, सूर्य अपना सुनहला संदेश सुनानेके लिए रात्रिकी क्षीण चादरमें छिपा हुआ मुसकुरा रहा था, अन्धतम कुछ समयमें ही अपने साम्राज्यसे हाथ धोनेको था, प्रभात होनेमें

(४)

उन्होंने अपना अल्प समय ही ऋषि अवस्थामें व्यतीत कर पाया था कि पूर्वजन्मके असाता कर्मने उनके ऊपर आक्रमण किया। उन्हें महा भयानक भस्मक रोग उत्पन्न हुआ, क्षुधाकी ज्वाला उग्र रूपसे धधकने लगी, मुनि अवस्थामें जो अल्प रूखा सूखा भोजन उन्हें प्राप्त होता था वह अग्निमें सूखे तृणकी तरह भस्म होजाता था और क्षुधाकी ज्वाला उसी भयानक रूपसे जलती रहती थी, इससे उनका शरीर प्रतिदिन क्षीण होने लगा।

इस भयानक वेदनासे स्वामीजी तनिक भी विचलित नहीं हुए और इस दारुण दुःखको सातापूर्वक सहने लगे, किन्तु इस रोगने उनके लोककल्याण और जनसेवा वृत्तिके मार्गको रोक दिया था।

स्वामी समंतभद्र कायरता पूर्वक आलस्यमें पड़े रहकर अपना जीवन व्यतीत नहीं करना चाहते थे। वह अपने जीवनके प्रत्येक क्षणसे जैनधर्मकी प्रभावना और उसके सत्य संदेशसे संसारको पवित्र बनाना चाहते थे इस मार्गमें यह व्याधि कंटकस्वरूप होगई थी. इतना ही नहीं था किन्तु अब तो वह इस भयानक वेदनाके कारण शास्त्रोक्त मुनि-जीवन बितानेमें भी असमर्थ होगये थे।

वह केवल मात्र नग्न रहनेके [illegible] के इच्छुक नहीं थे उन्हें केवल मुनिवेषसे मोह नहीं था। वह नहीं चाहते थे कि मुनिवेष धारण करते हुए उसके नियमोंकी अवहेलना की जाय। यदि वास्तवमें उन्हें मुनिवेषमें लाभ होता, यदि वह अपनी वेदनाकी किंचित् भी चर्चा करते तो गृहस्थों द्वारा उन्हें गरिष्ट मिष्ट स्निग्ध भोजन प्राप्त

श्री समन्तभद्रस्वामीका स्वयंभूस्तोत्र रचने ही
महादेवकी पिंडी फटकर चन्द्रप्रभस्वामीकी
प्रतिमा प्रकट होना व नमस्कार करना।

हो सकता था। किन्तु इस प्रकारकी क्रियाओंको वे मुनि वेषको कलंकित करना समझते थे, और नियमविरुद्ध जीवन बिताना भी वे उचित नहीं समझते थे। उस समयकी परिस्थिति उनके सामने महा भयंकर थी। उन्हें जीवनसे मोह नहीं था। शरीरको तो वह इस आत्मासे कबसे भिन्न मान चुके थे। शरीर नाश होनेमें उन्हें कोई खेद नहीं था, उन्हें यदि खेद था, तो यही कि उनके लोककल्याणकी भावनाएं अभी पूर्ण नहीं हो सकी थी। शरीर द्वारा आत्मा और अन्य प्राणियोंकी उन्नतिकी लालसा अभी उनकी तृप्त नहीं हो पाई थी, किन्तु इस महा भयंकर व्याधिके सामने उनका कुछ वश नहीं था। अन्ततः उन्होंने सन्यास द्वारा नश्वर शरीरसे अपना सम्बन्ध त्याग देनेका निश्चय किया।

सौभाग्यसे उन्हें लोक कल्याणकारी मनुष्यी गुरुका संसर्ग प्राप्त हुआ था, उनमें समयोचित विचारशक्ति विद्यमान थी। उन्हें अपने प्रिय शिष्यकी भावना ज्ञात हुई। न्यायशास्त्रकी संसारमें दुन्दुभि बजाने वाले अपने प्रतिभाशाली शिष्यका असमयमें वियोग होजाना उन्हें इच्छित नहीं था। वह समझते थे कि स्वामी समंतभद्रसे लोकका भविष्यमें अधिक कल्याण होगा। इनके द्वारा संसारको न्यायके रूपमें जैन दर्शन प्राप्त होगा। वह उनके जीवनको असमयमें नष्ट हुआ नहीं देखना चाहते थे किन्तु ऐसी अवस्थामें वह मुनिवेष धारण कर, रह भी नहीं सकते थे। अतु एकबार उन्होंने स्वामीजीको समीप बुलाकर कहा:—

"वत्स! तुम जिनकल्प होकर व्याधिसे निर्मुक्त होनेका उद्योग करो और उसके लिए चाहे जहां जिस वेषमें विचरण करो। स्वास्थ

हो जानेपर तुम फिर मुनि दीक्षा धारण कर सकते हो । यदि शरीर स्थिर रहता है तब धर्म और लोकका कल्याण कर सकते हो, लौकिक और आत्मिक कल्याणके लिए शरीर एक अत्यंत आवश्यक साधन है, इस साधनको पाकर इसके द्वारा संसारकी जितनी अधिक सेवा की जा सके कर लेना चाहिए, किन्तु वह सेवा स्वस्थ शरीर द्वारा ही की जा सकती है । अस्तु, तुम कुछ समयके लिए संघसे स्वतंत्र रहकर अपने शरीरको स्वस्थ बनाओ ।

स्वामीजीने अपने गुरु महाराजकी समयोचित आज्ञा स्वीकार की, इस वेष द्वारा आत्मकल्याणकी गतिको उन्होंने रुकते हुए देखा अस्तु, उन्होंने इस वेषका त्याग करना उचित समझा और दिगंबर मुद्राका त्याग कर दिया ।

अब वे अपने स्वास्थ्य सुधारके लिए स्वतंत्र थे । मुनिवेषकी बाधा उन्होंने अपने ऊपरसे हटा दी थी, और यह कार्य उनका उचित ही था । पदके आदर्श अनुसार कार्य न कर सकनेपर यही कहीं अत्यंत उचित है कि इनसे नीचे पदको ग्रहण कर लिया जाय किन्तु आदर्शमें दोष लगाना यह अत्यन्त घृणित और हानिप्रद है ।

किन्तु इसके प्रथम तो वह दिगम्बर थे, उनके पास कोई वस्त्रादि था ही नहीं, और इस दिगंबर वेष द्वारा किसी प्रकारके वस्त्रादिकी याचना नहीं कर सकते थे, अस्तु । उन्होंने भस्मसे अपने सारे शरीरको अलंकृत कर लिया और इसप्रकार जीवनके अत्यन्त प्रिय वेषका उन्होंने परित्याग कर दिया इस वेषका परित्याग करते समय उनका हृदय कितना रोया था, मानसिक वेदनासे वह कितने संतापित हो उठे